सीतायन

मंगला प्रसाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सीतायन

महाकाव्य

मंगला प्रसाद

कल्लोल प्रकाशन
नासिरपुर, सुसुवाही, वाराणसी —२२ १००५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशक

कल्लोल प्रकाशन

नासिरपुर, सुसुवाही, वाराणसी –२२१००५

□

© मंगला प्रसाद

□

प्रथम संस्करण, १९९८

□

मूल्य : सौ रुपये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परम पूज्य पितृतुल्य डॉ० रामजी उपाध्याय जी
को
सादर समर्पित

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये'

— मंगला प्रसाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रस्तावना

भारत में आदर्श नारियों की गणना में पार्वती के बाद सीता का स्थान अनन्यतम है। इनके अतिरिक्त सावित्री, शची, अनसूया आदि न जाने कितने आदर्श नारी चरित्रों से भारतीय वाङ्‌मय भरा पड़ा है। ये चरित्र इतने उदात्त हैं कि इन्हें देवताओं की कोटि में रखा गया है । ध्यातव्य रहे कि हमारे यहाँ मनुष्य और देवताओं में परस्पर पार्थक्य उतना नहीं रहा, जितना उनके बीच ऐक्य और समरसता । देवताओं के समानान्तर देवियाँ रही हैं । ये देवियाँ लोकसामान्य नारियों से पृथक् नहीं रही हैं,यद्यपि उनका चरित्र अलोकसामान्य रहा है । स्त्रियों के नाम के आगे प्रयुक्त होने वाला 'देवी' शब्द उनमें देवत्व का अभिनिवेश सूचित करता है ।

यद्यपि पार्वती और सीता नारी के महत्तम आदर्श सतीत्व के चरम निदर्शन हैं, किन्तु चरित्रगत परिणति और प्रभविष्णुता की दृष्टि से सीता का चरित्र पार्वती की तुलना में अधिक लोकसामान्य भाव–भूमि पर प्रतिष्ठित तथा समुज्ज्वल है । लोक–हृदय में पार्वती सीता की तुलना में दिव्यतर तथा अलौकिक शक्ति–सम्पन्न रूप में समधिष्ठित हैं । सीता कुलीन, लज्जाशील, लोकभीरु, पतिप्राण किंचित् निर्वैयक्तिक आदर्श गृहिणी के रूप में लोक में सम्मानित रही हैं । उत्तर भारत की जनता के लिए सीता के चरित्र का स्रोत तुलसीदास का 'मानस' रहा है। कवि ने अपने प्रबन्ध में सीता का सम्पूर्ण आख्यान प्रस्तुत नहीं किया है । फिर भी, लंका से अयोध्या वापस आने के बाद वाला सीता का चरित्र लोक–हृदय से अनभिज्ञ नहीं रहा। वाल्मीकि रामायण और अन्यान्य ग्रन्थों और लोक–हृदय की अनुभूति के सहयोग से सीता का मर्म–विह्वल, करुणा–संवलित उदात्त चरित्र आज भी उत्तर भारत की जनता विशेषकर स्त्री–समुदाय के हृदय पर अंकित है । इस सम्पूर्ण चरित्रांकन में मध्यकालीन भारतीय नारी की पुरुष–निर्भरता,असहाय दशा, आत्म–गोपन और निर्वैयक्तिकता जैसी विशेषताएँ अन्तर्भुक्त हो गयी हैं ।

सीता की अग्नि–परीक्षा और तदुपरान्त पुनर्निर्वासन को लेकर बहुत से सहृदय और मनीषी चिन्तित हो सकते हैं, उन्हें राम की पुरुषोत्तमता पर सन्देह होने लग सकता है । तुलसी बाबा ने तो इस दुर्निवार समस्या से बचने के लिए राम–कथा में इस प्रकरण को ही नहीं उठाया। बहुत–से सुधी पाठलोचक और समीक्षक भी ऐसा ही मानते हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रबन्ध–सर्जक के लिए दो चीजें सर्वाधिक विचारणीय होती हैं —पहली, मूल अथवा क्षेपक कथावस्तुओं से वह अपनी प्रबन्ध–वस्तु का संयोजन किस रूप में करे तथा दूसरी, उसका प्रबन्धगत परिप्रेक्ष्य क्या हो और कैसा हो । पहली के सम्बन्ध में मेरा विचार है कि कविता में घटना, परिस्थिति, विवरण, स्थान, कार्य आदि का उतना महत्त्व नहीं है जितना इनकी सहायता से मनुष्य के उदात्त भावों के स्वाभाविक उद्‌भावन, संवर्द्धन, पोषण और समुन्नयन का है । मानवीय भावों के व्यायाम और परिष्कार का माध्यम है कविता । कविता में इन भावों का अंकन जितनी समग्रता, समरसता और समुन्नति से सम्भव है, उतना साहित्य की अन्य विधा में नहीं । कविता रसात्मक व्यापार है जो प्रबन्ध काव्य में पूर्णता को प्राप्त होता है । प्रबन्धकाव्य में उपन्यास जैसा यथार्थ–बोध, सूक्ष्म अवलोकन और जीवन का वैविध्य नहीं, इसमें नाटक जैसी त्वरा, व्यंग्य और मूर्त्तता नहीं, साथ ही इसमें कहानी की क्षिप्रता, प्रवाह और अन्विति भी नहीं । फिर भी, इसमें सम्पूर्ण जीवन की समरसतापूर्ण भावमय झाँकी मिलती है जो हमें उद्वेलित न करके रसमग्न करती है । पॉल वलेरी ने इसी अर्थ में कविता को गद्य से श्रेष्ठ माना है —Poetry exceeds prose, as dancing exceeds walking'.[1] ऑस्कर वाइल्ड ने भी कविता में प्रकृति की घटनाओं को महत्त्व न देकर कल्पना–बिम्बों को श्रेयस्कर माना है —Art holds no mirror to nature, but is rather man's protest against nature's ineptitudes, his substitution of perfect imaginative forms for rudimentary natural ones."[2]
कहने का आशय यह कि प्रस्तुत प्रबन्ध में सीता के जीवन से सम्बन्धित विवरणों पर उतना ध्यान न देकर उनसे सम्बद्ध भावगत चरित्रांकन तथा परिणति को बिम्बित करने का प्रयास हुआ है और ऐसा करने में आवश्यक चरित्रानुकूल कल्पना से भी काम लिया गया है ।

अब रह गयी बात प्रबन्धगत परिप्रेक्ष्य की । इस पर विचार करने के पहले साहित्य सम्बन्धी अपनी कुछ मान्यताओं (या ग्रन्थियों?) का खुलासा कर देना आवश्यक होगा । साहित्य–सर्जना या समीक्षा में दृष्टि पर चर्चा सबसे पहले होती है । यानि, लेखन अथवा समीक्षा में नजरिया क्या रहा है–आदर्श या यथार्थ, या फिर मिश्र? यथार्थ और आदर्श जैसी बातें साहित्य की अन्य विधाओं में तो लक्षित की जा सकती हैं, प्रकृत प्रबन्धों में नहीं । यहाँ एक–एक कर भावों की बहुरंगी छटाएँ दिखाई पड़ती हैं जो अन्त में एक ही भाव–समुद्र में मिलकर एकसार हो जाती हैं । नव रस कहने को हैं । काव्य की समग्र प्रोक्ति (Discourse) में वे मात्र रस रहते हैं । यही है भाव–समाधि जो कालजयी कृतियों को पढ़ने के दौरान सूक्ष्म संवेदना वाले प्रौढ़ सहृदयों को प्राप्त होती है ।

---

[1] 'दि मार्डर्न ट्रेडिशन' – सं० एलमन और फीडेल्सन, में पॉल वलेरी का सार–संक्षेप । पृष्ठ सं. 11 ।
[2] वही, ऑस्कर वाइल्ड का सार–संक्षेप, पृष्ठ सं० 7 ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वैज्ञानिक सोच वाला यथार्थ दृष्टि से सम्पन्न आधुनिक मानव परिस्थितियों का विश्लेषण करके कुछ उपपत्तियों पर पहुँचता है, ग्राह्य को स्वीकारता है और अग्राह्य को छोड़ देता है । अति भावुक और संवेदनशील मन कल्पना से घटनाओं को आदर्शपरक मोड़ देकर कृति को सुखान्त और आदर्श बनाकर तृप्त हो जाता है । कविता का भावमय जगत इतना ऋजु और व्यवस्थित नहीं होता । वहाँ तो भावों के गहरे अन्तर्द्वन्द्व से श्रेष्ठ कविता का जन्म होता है । जितने वांछनीय राम हैं, उनसे कम वांछनीय रावण नहीं, क्योंकि रावण के परिप्रेक्ष्य में राम का रामत्व प्रकाशित होता है । कविता में परस्पर विरुद्ध भावों का जितना गम्भीर और मूर्त्त चित्रांकन होगा, कविता का प्रभाव भी उतना ही अधिक होगा । श्रेष्ठ काव्य का निकष यही है ।

इसीलिए राम द्वारा सीता के निर्वासन को अलोकमान्य समझते हुए भी स्वीकार किया गया है । रामायण में लोक–प्रवाद का संकेत भर है । यहाँ उसकी विवृति दिखाते हुए आदर्श युगल के हृदय–द्वार को अनावृत करने की बाल–चेष्टा की गयी है । कृति में सीता के ऊर्जस्वित्, कठोर व्रत और आत्मत्याग से युक्त चरित्र का रेखांकन करते हुए उन्हें चतुःशील–मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा–से संयुक्त दिखाया गया है । कुल मिलाकर लोक–हृदय में प्रतिष्ठित सीता के चरित्र की कल्पना–प्रवण भावमय प्रस्तुति है यह प्रबन्ध ।

कुछ चर्चा महाकाव्य के स्वरूप पर करना असमीचीन न होगा । हमारी भौतिकवादी दृष्टि, वैज्ञानिक सोच और विश्लेषणपरकता ने हमें संवेगात्मक रूप से अस्थिर और भाव की दृष्टि से निश्चय ही दरिद्र बनाया है । अशिक्षित, विपन्न और तथाकथित सभ्यता से दूर लोकमानस अभी कल तक अपने सारे भौतिक अभावों, अतृप्त आकांक्षाओं तथा अव्यवस्थाओं की पूर्ति अपनी सजग भाव–कल्पना से कर लिया करता था और इस प्रकार समष्टि जगत् से अपने को विच्छिन्न न अनुभव करके समवाय सम्बन्ध का अनुभव करता था, जो एक प्रकार से साक्षात् कविता तो नहीं परन्तु कविता का कच्चा माल अवश्य हुआ करती थी । इसीलिए भर्तृहरि को कहना पड़ा –सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ।

बीसवीं शताब्दी के अभूतपूर्व मनोविद् सी०जी०युंग ने भी विश्व की दृश्यमान तमाम अव्यवस्थाओं में असाधारण व्यवस्था देखते थे । वैज्ञानिक दृष्टि ने हमारी पुरातन वैश्विक दृष्टि को पदे–पदे कुंठित किया है । यही कारण है कि आज हम भाव–दारिद्र्य के शिकार हो गये और कविता की आत्महत्या पर चर्चा करने लगे हैं । फिर भी, हम देखते हैं कि कविताओं के पुलिन्दे हर रोज प्रकाशित हो रहे हैं । सामान्य पाठक का इन कविताओं के प्रति क्या रुख है, यह अलग बात है । इसमें सन्देह नहीं कि कविता के बाह्य स्वरूप और उसकी आत्मा में जितना बदलाव और वैविध्य आया है, उतना साहित्य की अन्य किसी विधा में नहीं आया । तात्पर्य यह कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कविता–कर्म को अत्यन्त सरल और कविता को गली–नुक्कड़ की चीज बनाकर उसके साथ बचकाना व्यवहार किया गया है । कविता हाशिए पर आ गई है ।

फिर महाकाव्य ! किसे कहेंगे महाकाव्य ! उसके अभिलक्षण बाह्य हैं या आन्तरिक ! लक्षणों को आधार बनाकर महाकाव्य की पदवी धारण कर हिन्दी में कितने महाकाव्य आये जो आज साहित्येतिहास की पुस्तकों में भी मुश्किल से मिलते हैं । इसके क्या कारण हो सकते हैं? लोग पाठकीय अभिरुचि की बात करेंगे । किन्तु पाठकीय अभिरुचि सिद्ध महाकाव्यों–रामचरितमानस, कामायनी–के साथ तो नहीं आड़े आती ! महाकाव्य के सन्दर्भ में एक बात और विचारणीय है । उपन्यासों को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा जाता है । रूपक के अर्थ में भले यह बात सच हो, पर वास्तविकता में उपन्यास और महाकाव्य में पर्याप्त मूलभूत अन्तर हैं । पहली बात तो यह कि उपन्यास की प्रकृति यथार्थधर्मी होती है, इसके विपरीत महाकाव्य अपने सम्पूर्ण याथार्थ्य में से आदर्श की अनुगूँज देता है । यथार्थ की नींव पर हमारा जीवनरूपी भवन टिका है । बहुत–कुछ ऐसा भी है जो हमारी पहुँच के बाहर है, फिर भी उसे पाने की ललक हममें बनी रहती है । यही कारण है कि वास्तविक जीवन के बहुत से प्राप्तव्य को प्राप्त करके भी हम असन्तुष्ट रहते हैं, इसके विपरीत कल्पना की बहुत सारी वस्तुओं को न पाकर भी उनकी स्पृहा मात्र से हम सन्तोष का अनुभव करते हैं । संस्कृति की सर्वोच्च उपलब्धियाँ आदर्श की अभीप्सा की देन हैं । इसी परिप्रेक्ष्य में कल्पना का महत्त्व अक्षुण्ण है । कल्पना यथार्थ को नया और अनन्तमुखी आयाम देती है । सम्भवत: इसीलिए आइन्स्टीन को कहना पड़ा कि 'कल्पना, ज्ञान से श्रेयस्कर है' । इस रूप में महाकाव्य, जाति की समस्त सांस्कृतिक ऊर्जा का भाषाबद्ध समुच्चय होता है । यद्यपि वह जीवन का यथावत् वर्णन नहीं करता, फिर भी कल्पना के सम्पुंज में वह ऐसे दीप–स्तम्भ छोड़ जाता है जो जातीय अस्मिता की पहचान कराने और उसे अक्षुण्ण रखने में सहायक होते हैं । महाकाव्य किसी जाति या देश के परम्परागत जीवन–मूल्यों का कलात्मक कोश या बिम्ब होता है जो सम्भवत: सबसे प्रामाणिक होता है, इतिहास से भी अधिक । पृथ्वीराजरासो, पद्मावत, रामचरितमानस, कामायनी आदि कृतियों को पढ़कर हम एक जाति के भावगत विश्व के परिदृश्य से परिचित होते हैं । कहने को तो ये चारों कृतियाँ काव्यवस्तु भाषा, सन्देश, पात्र या चरित्र आदि की दृष्टि से परस्पर भिन्न हैं, किन्तु यह भिन्नता समुद्र के ऊपर उठने वाली नाना तरंगों की भाँति है । उनके भावगत संसार में एकता है, समुद्र की तली में समतल रहने वाले जल के समान ।

प्रश्न है 'सीतायन' क्यों? इसके केन्द्र में नारी क्यों है ? उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध से ही समूचे विश्व के समुन्नत साहित्य में नारी को केन्द्र बनाकर रचना–कर्म में प्रवृत्त होना आकस्मिक नहीं है । इसके पीछे पुरुषसत्तात्मक समाज का विशाल काल–फलक रहा है जिसमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नारी कहीं–न–कहीं पुरुष द्वारा पददलित होती रही है । इतना तो मानना ही पड़ेगा कि मानवीय संस्कृति के निर्माण में नारी के महान् योगदान को अनदेखा किया जाता रहा है । जबकि वास्तविकता यह है कि मानव जाति के बाह्य और आभ्यन्तर समुन्नयन में नारी जाति का योगदान पुरुष से अधिक रहा है । उसका माँ बनना और मातृत्व की दिनचर्या ही उसे मानवता के मानदण्ड पर बहुत ऊँचे स्थापित करने के लिए पर्याप्त है । लेकिन पुरुष –सत्तात्मक समाज नारी के महान् चरित्र को अनदेखा ही नहीं, उसका अवमूल्यन भी किया है । रामायण की सर्वाधिक मर्मान्तद घटना राम द्वारा सीता का निर्वासन है जिसकी चरम सीमा है सतीत्व की पुन:परीक्षा, जिसमें उनकी माता पृथ्वी देवी उन्हें सादर अपनी गोद में लेकर रसातल में समा जाती हैं । इस हृदयविदारक घटना का अन्त महाकवि ने आश्चर्य में पर्यवसित दिखाया है, करुणा में प्लावित नहीं । राम पर भी इसके मार्मिक प्रभाव का चित्रण नहीं दिखाया गया है । यह प्रबन्ध–कौशल भी हो सकता है और इसकी अन्य व्याख्या भी सम्भव है । इसमें सन्देह नहीं कि महाकवि ने सीता के इस मूक त्यागमय समर्पण का चित्रण करके नारी की सर्वाधिक गौरवशाली विशेषता 'प्रेम' की अन्तर्निहित ध्वनि को गुंजरित किया है, जिसमें कुछ लेने की नहीं, वरन् अपना सब कुछ दे देने की कामना रहती है, जिसमें सब कुछ लुटा देना ही सब कुछ पाना होता है ।

सीता का चरित्र इतना उदात्त और महनीय है कि हम जैसे साधारण लोगों के लिए उसकी कल्पना भी दुरूह है । आज हम जिस सामाजिक परिवेश में जी रहे हैं और उसमें नारी अपनी सम्पूर्ण चारित्रिक नग्नता में जिस रूप में प्रस्तुत की जा रही है, सीता के चरित्र का अनुभावन दुष्कर है । उसके लिए जिस चारित्रिक दृढ़ता, वैचारिक ऊँचाई और मूल्य–बोध की आवश्यकता है उसे हम भौतिकवादी बुद्धि के पैरों तले अहर्निश रौंद रहे हैं। हमारी स्थिति है –

अन्तर मलिन विषय मन अति तन पावन करिय पखारे
मरइ न उरग अनेक जतन बल्मीक विविध विधि मारे । – विनयपत्रिका

फिर भी हमें सदैव आशावादी होना चाहिए । विचार में महती शक्ति होती है, और यदि विचार काव्य के कलेवर में से जन्मता है तो उसमें अभूतपूर्व प्रभविष्णुता आ जाती है ।

काव्य–रचना मेरा आन्तरिक धर्म रहा है । अपने अन्त:करण की निर्मलता और भाव–परिष्कृति के लिए मैंने बचपन से ही छन्द–रचना में रुचि ली । परन्तु उसे सार्वजनिक करने की स्वाभाविक इच्छा मेरी कभी नहीं रही । मेरे पितृतुल्य प्रात:स्मरणीय डॉ० रामजी उपाध्याय जी ने यदि इसके लिए मुझे बारम्बार प्रेरित न किया होता तो सम्भवत: यह रचना न लिखी जाती । जब वे 'सीताभ्युदयम्' नाटक की रचना में संलग्न थे, मैं उनके सान्निध्य में था । सीता के जीवन से सम्बन्धित अनुसन्धान से प्राप्त बहुत सारी बातें उन्होंने मुझे बताईं और उन्हीं का सुझाया हुआ नाम है 'सीतायन' । फिर भी यह कृति उनकी कल्पना के अनुसार नहीं आ सकी, इसका मुझे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खेद है । इस सम्बन्ध में मुझे यही कहना है कि मैं बस ऐसा ही और इतना ही लिख सकता था।

'सीतायन' की वस्तु का निर्माण अपने आप होता गया है । कलाभिनिवेश की दृष्टि से वस्तु के क्रम में परिवर्तन किया गया है । इसकी रचना में 'सीताभ्युदयम्' नाटक की सहायता सर्वप्रथम है । रामायण से मूल संवेदना तो ग्रहण ही की गई है, प्रभुदत्त ब्रह्मचारीरचित 'श्रीराघवेन्दुचरित' से कुछ भावों को कण के रूप में लिया गया है । अधिकांश कल्पना द्वारा निर्मित है । पाण्डुलिपि को सर्वप्रथम आद्योपान्त देखने का श्रम उठाया है हमारे बन्धु डॉ० अवध नारायण मिश्र ने । मैं उनका हृदय से आभारी हूँ ।

—मंगला प्रसाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सीता

सुलभ सन्तोष अमृत है न इसको जानता मानव ।
असन्तोषी बने रहकर बहुत सुख मानता मानव ।।

गहन सीता–व्यथा है जो करुण है और समरस है ।
नहीं है द्वन्द्व जिसमें शान्ति ही जिसका परम रस है ।।

महायोगी कठिन तप से जिसे है साधता आया ।
सधा क्षण के लिए औचक गया तो फिर नहीं पाया ।।

समर्पण–भूमि सीता में क्षमा का बीज अँखुवाया ।
बढ़ा तो भूमिजा ने फल अयाचित ही अमर पाया ।।

सुखों के कोष को दुःखप्रद बताया कृष्ण–गीता ने।
दुःखों के कोष को अमृत बनाया सौम्य सीता ने ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

⌘ अनुक्रमणिका ⌘

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रथम सर्ग

यामिनी विश्रान्त है एकान्त तमसा तीर,
निविड़ छाया है अँधेरा तदपि लक्षित नीर ।
वनश्री का नील अंचल मुक्त है अभिराम,
झिलमिलाती नखत–माया बनाती श्रीधाम ।। १ ।।

निशा का पदन्यास जैसे मन्द्र करुण गँभीर ,
भूमिजा का मन–विहंगम था अचल मतिधीर ।
देखता था जल–लहरियाँ भागतीं अश्रान्त,
श्रवण में कल्लोल–कूजन, दिशा थी उद्भ्रान्त ।। २ ।।

नयन तिर्यक् थे समाहित नील जल की ओर,
अंसलम्बित व्यस्त अंचल हिल रहा सुखभोर ।
मातृगौरव भाव से मन–तुरग जो उत्तुंग,
प्रिय विरह की सोच नतशिर, अनमना ज्यों भृंग ।। ३ ।।

विश्व लीलाचक्र का जो सूत्रधार अनन्त,
खेलता है खेल शिशु–सा, कौन पाता अन्त ।
दुःख–सुख का भेद, भाषा या भुवन के अर्थ,
चेतना की भूमि समरस, चपल चिन्ता व्यर्थ ।। ४ ।।

दिया प्रिय ने आज यह मेरा सुकृत उपहार,
किया मेरे शील, शुचिमय नर्म का प्रतिकार !
दयित का यदि प्रेम पांसुल, रंच भी साभार–
मिला है, तो वह शिरोपरि मैं करूँ स्वीकार! ।। ५ ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्मिलन दुर्मिलन में ढल रचे अनगढ़ रीति–
कभी ऐसा हो न! ईश्वर! यशस्वी हो प्रीति।
व्यष्टि और समष्टि सुख में नहीं कुछ भी द्वन्द्व,
एक मिलता दूसरे से सहज ही अविलम्ब ।। ६।।

प्रिय मिलन के क्षण सघन थे, संकुचित आयाम,
रही भूली गति जगत की, नियति की जो बाम।
काल–रथ को रोककर स्थिर खेलता था काम,
थी किलकती कामना जिसमें नहीं विश्राम ।। ७।।

आज खुलकर देखते हैं नयन जग–सम्भार,
साज–सुख घर का अभी तक एक था बस सार।
किया विधि ने खेल मेरे साथ कैसा बाम !
जगत् क्रीडोत्सव सरीखा दीखता अभिराम ।। ८।।

गगनचुम्बी कलशशेखर कनक–मन्दिर छाँह–
लिये आसव लास्य का अनुहार करती बाँह –
कामिनी कलकंठ रंजित मधुर हास–कदम्ब,
स्वप्न था या सत्य? तमसे ! तू बता अविलम्ब ।। ९।।

जन्म नारी का सहचरी या कि छलना हेतु ?
कामिनी की सजल करुणा क्या न बनती केतु ?
करुण है सखि रूप, तू है धैर्य की प्रतिमान,
तू बनेगी प्रेरणा कृतिकार की सम्मान ।। १०।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूर हैं प्रिय और परिजन, देश, पुरजन दूर,
जनक जननी दूर, मिथिला भी बहुत है दूर।
निकट है तो प्रसव–बेला दुग्ध–घट परिपूर्ण –
लिये आँचल में मुझे दुलरा रही है तूर्ण ॥११॥

एक ओर समस्त परिजन, सुख–विभव, परिवार,
सरल सखियाँ, उमड़ता सौभाग्य, सुख का सार।
एक ओर किलक भरे शिशु का मनोहर रूप,
देखने लग गयी सीता कान्त कलभ स्वरूप ॥१२॥

मातृ करुणा–सिन्धु का ज्यों–ज्यों सतत विस्तार –
हो रहा था, मधुर होता जा रहा था भार।
छल, असूया, वंचना, निर्दय जगत व्यवहार –
अड़ रहे थे जो अभी तक मन–सदन के द्वार ॥१३॥

घुल रहे थे, धुल रहे थे, बन रहे थे क्षार.
स्नेह की सरिता बही थी, चित्त द्रवित अपार।
चित्त–द्रुति जो परम वैभव, मानवी का मान,
नहीं उससे परे कोई जगत का परिमाण ॥१४॥

यह अहं–विस्तार ही था शिशु युगल के चित्र –
देखती थी जानकी वह कल्प–सृष्टि विचित्र ।
धरित्री आकाश जिनका कहीं ओर न छोर,
उछलते कन्दुक सदृश थे, खेलते सुखभोर ॥१५॥

नृत्य में भूला भ्रमित था विश्व का उल्लास,
देखकर सीता चकित थी आत्म–मंगल रस।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धृति, समुन्नति, नति, सुमति के भाव—कोष अपार,
खड़े अंजलिबद्ध थे नतमुख अनावृत द्वार ॥ १६॥

दिवस का सपना पलक में हुआ अन्तर्धान,
हो गयी सीता सजग, जग का हुआ था भान ।
हो गया था ध्वस्त सीता का खगोल—विलास,
दे रही थी भ्रू—नियति की काल को भी त्रास ॥ १७॥

कहरती थी वेदना तब गरजता था काल,
उठ गया था गगन का भी दर्प—उद्धत भाल।
डर गयी थी आज पहली बार सीता भ्रान्त,
कौन एकाकी भला है जगत में अक्लान्त ॥ १८॥

दयित है वह राम की, अब गुर्विणी परित्यक्त,
नाम अबला, भीति संबल मात्र है अव्यक्त।
स्वीय समता शील से जो रचा अनुपम नीड़,
चित्त—खग उसमें छिपा बैठा रहा सव्रीड़ ॥ १९॥

दया का मृदु आस्तरण था, शान्ति सुलभ समीर —
डोलता था विश्व—जननी के चतुर्दिक् धीर।
सो गयी थी वह सुहासिनि कम्पकाय अधीर—
नींद की सुख गोद में, था ढका अंचल चीर ॥ २०॥

बह रही थी श्याम तमसा लिये दर्पण नीर,
ऊँघते पादप खड़े थे जरठ बेसुध वीर।
खेलता था पवन तृण से चपल जैसे बाल,
घेरते जब विटप—समुदय भागता तत्काल ॥ २१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जड़ सदा ही हैं मनस्वी, पवन तो अवधूत,
धूल के कण बीनता है और बनता पूत !
याचना ही मृत्यु है यश—लालसा अपमान,
दे रहे सन्देश तरु विभु के अमर वरदान ॥ २२॥

दूर—दूर विवार वन का तमस—जिह्वा घोर,
विटप—रद—संघनित माया कहीं ओर न छोर ।
इन्द्रमाया लीन उडुगन निपट चुप्पी साध,
देखते चलते नियति—लीला विगत—अपराध ॥ २३॥

यह तुरीय सकरुण बेला जड़—प्रवाह अबाध,
विगत सब सन्ताप तन का और मन की साध।
आप अपना ही बनाती शून्यता का स्तूप,
नहीं जिसका अन्त, सुन्दर मोहमय तम—कूप ॥ २४॥

नहीं जिसमें विरह या संयोग का है भान,
राम सीता जहाँ समरस दीखते अम्लान।
नित्य तृष्णा की यवनिका खोलते दिन—रात,
नींद के पल ढूँढ़ती, पाती न स्वच्छ प्रभात ॥ २५॥

सो रही सीता, जगत का सो रहा व्यापार,
सो रहे सारस पुलिन पर निर्झरी के हार।
सो रही थी वेदना पर जागती थी साँस,
जग रहे थे नखत लखने को प्रभात—विलास ॥ २६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बह रही थी ज्योत्सना की दुग्ध–धवलित धार,
तमस का अनुराग राका का मधुर अभिसार।
समय जैसे रुक गया था भूलने की रीत–
सुन रहा था पवन चुपके प्रकृति का संगीत ।। २७।।

पुलिन–सहचर देवतरु जो राजता अभिराम,
आज जैसे खिन्न मन कुछ सोचता अविराम।
वह पलाश–निकाय, जिसके तले थी असहाय –
सो रही सीता, नमित मुख था बना निरुपाय ।। २८।।

एक काया या कनक कौशेय तन्तु महीन,
शिलष्ट वसुधा अंक से जैसे बिसूरे दीन ।
झिर रही थी चन्द्रिका कुछ पर्ण–जाली भेद,
तिर रही थी जानकी मुख पर दिखाती खेद ।। २९।।

कौन कहता है कि आएगा सुवर्ण विहान,
समय रथ तो सुथिर बैठा है किये ज्यों मान।
आह! कितनी वेदना गंभीर उदधि अपार !
धन्य सीते! जगत जननी! करुण मूर्ति उदार ।। ३०।।

इस यवनिका का बड़ा है सूत्रधार स्वच्छन्द,
निष्करुण रच रहा करुणा के कलित नव छन्द।
छन्द की माया मनस्वी को बनाती धीर,
किन्तु नारी, चित्त–विह्वल, धरे कैसे धीर? ।। ३१।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वितीय सर्ग

रज पट पर उँगली से रचती है कर्मों की रेखा,
सीता ने अपनी परिभाषा नये कोण से देखा ॥ १॥

शिथिल वदन है किन्तु मुदित मन बिथुरी बिखरी अलकें—
हिला रही है वायु चुहल से, झुकी हुई हैं पलकें ॥ २॥

ऊपर नीला नभ फैला है जैसे स्वच्छ अनन्त ।
सीता के मानस—विहार का कहीं न दिखता अन्त ॥ ३॥

प्रिय—वियोग की व्यथा घनी थी निरवलम्ब थी सीता ।
कब, किसका इस विश्व—कुहर में पूर्ण हुआ मनचीता ॥ ४॥

फिर भी देख प्रकृति—कुहुकिनि का कुहक—प्रसार निराला।
अपना आपा भूल गयी थी क्षण भर को वह बाला ॥ ५॥

"प्रिय परिजन तो क्या ! गिरिजन की छाया भी न यहाँ है।
राज—विभव में पलने वाली सीता आज कहाँ है ? ॥ ६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तूल समान अरे मैं इतनी हल्की हूँ एकाकी।
मैं बिछुड़ी तो सब जन बिछुड़े रहा न कोई बाकी ।। ७।।

यह 'मैं' क्या है जिसने मुझको इतना आज छला है।
मैं ढूंढूगी इसे आपमें कैसी गूढ़ बला है "।। ८।।

चित्त-चितेरा अलग दूर जा बैठा आनत आनन ।
भकुआया-सा, सीता थी सन्धान-निरत अपनापन ।। ९।।

पुलिन स्वच्छ थे, मुक्त गगन था, लहराता था कानन ।
छूकर चलता सहज समीरण सीता का अविचल तन ।। १०।।

चित्त-भूमियों को क्रम-क्रम से उल्लंघन कर सीता –
पहुँच गयी थी जहाँ चेतना सस्वर गाती गीता ।। ११।।

स्मृति-समुद्र की लोल लहरियाँ लहराती थीं अनगिन।
पल में सब एकत्र हुआ था शिशुता, बचपन, यौवन ।। १२।।

मृग-मरीचिका की न तृषा यह मन-पशु को भरमाती।
करुण कराह भरी काया को छल से पास बुलाती ।। १३।।

यह निर्वैर विराट लोक था सब कुछ लगता अपना ।
ज्योतिष्मती भूमिका समतल रचती अभिनव् सपना ।। १४।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रिय परिजन, साकेत, स्वजन, सरजूतट भ्रमण मनोहर ।
तमसा–तट, वन–हरिण, मछलियाँ, जलक्रीड़ा–रत वानर ।। १५।।

जातरूप मरकत आभूषण, कौशेयक, वीथी पुर ।
कुवलय माला, शुक्ति शुभ्रतर, वनपथ, शस्य मनोहर ।। १६।।

तुलना ही भ्रम है शश्वत् साम्राज्य निसर्ग हमारा ।
कृति में प्रतिपल बिहँस रहा है अपना विश्व पसारा ।। १७।।

सजल उषा हौले से आती सोया विश्व जगाती ।
मधुर–मधुर पद–चाप दिये रजनी चुपके चल जाती ।। १८।।

जननी के अनकहे बोल–से अनाहूत जो आती।
मलय वास में स्नेह–सनी भोली बयार सहलाती ।। १९।।

मधुर स्नेह–अंजन से भावित प्रेम–पुलकमय जीवन ।
खिल–खिलकर अनुराग–कमल छा जाते मन के आँगन ।। २०।।

राज–काज, परिजन–परिचर्या, गुरुओं का आराधन –
दिनचर्या हो जननि–सपर्या या क्रीड़ा, घर, कानन ।। २१।।

प्रमरस शील, सँकोच, सरलता, मर्यादा से भावित ।
प्रिय थे सतत पुरोमुख, स्वात्मा की गरिमा से मण्डित ।। २२।।

वह स्वाराज्य–विलास मनोरम मुख पर रंजित होता ।
विहँसित करुण अपांग लिये जगती का कल्मष धोता ।। २३।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वही विरति अनुराग–तुरग को बरबस खींचे लाती ।
मैं ही क्या जगती के खग–मृग को भी पास बुलाती ॥२४॥

मन जिसकी गहराई में धँस अब तक पार न पाया ।
वह था प्रिय का आत्म–समर्पण झिलमिल नर्मद माया ॥ २५॥

प्रिय का आत्म–समर्पण या मेरे मन का अवगाहन।
रिक्त हो चुकी थी मैं! कितना मुक्त हो चुका था मन ! ॥ २६॥

जैसे श्रान्त पथिक अलसायी घनी छाँह को पाकर ।
सुने निंदासी आँखों से दूरागत वंशी के स्वर ॥ २७॥

रहस–रहसकर पवन हठीला चले सुरभि से मिलकर ।
मन उड़ जाय अछोर गगन में लगा स्वप्न के द्रुत पर ॥ २८॥

वैसा ही तन–मन जगती का काया–कल्प हुआ था।
प्रिय ने कब से विजडित हृत्तन्त्री का तार छुआ था ॥ २९॥

वही दिवस था, वही रात थी, वही नखत मालाएँ ।
मैं भी वही, वही सारस, वन, स्वच्छ प्रणम्य दिशाएँ ॥ ३०॥

किन्तु चेतना के प्रवाह में उस क्षण थे सब संयुत ।
विलस रही थीं सुख–समुद्र की लहरें प्रतिक्षण नर्त्तित ॥ ३१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अद्‌भुत था छवि–चित्र ! गगन में अनगिन हाथ उठाये।
विकल आत्म–उल्लास धीर रहकर ज्यों चैन न पाये ।। ३२।।

कितना हल्का उस क्षण पाया था मैंने अपने को ।
उनके बिना न लख सकती थी प्रिय, परिजन या तन को ।। ३३।।

एक ओर मन की ऊष्मा से मन का ही लुट जाना ।
और दूसरी ओर विश्व का प्रिय में सिमटे आना ।। ३४।।

वही आज प्रिय ने मुझको तज दिया लोक के भय से ।
लोकाराधन से या अपने उर–व्यापी संशय से ।। ३५।।

कितनी दारुण रीति जगत की, अपनी राह चली है ।
काँटों की शय्या को भी कहना है–'बड़ी भली हैं' ।।३६।।

प्रिय का मन कितना निगूढ हो सकता है यह कोई।
प्रेमास्पद ही जान सके तो जाने, और न कोई ।। ३७।।

रामभद्र में और दयित में अन्तर जग पहचाने ।
विश्व–देवता और आत्माराम अलग कर माने ।। ३८।।

किन्तु प्रेमियों का अन्तस्तल यही जानता आया !
मुझमें और पराये में कुछ भी तो नहीं पराया ।। ३९।।

प्रेम–कमल केवल अपने हित कभी नहीं खिलता है।
सुरभि और आमोद भेंट वन–उपवन को मिलता है ।। ४०।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गहन अँधेरे व्यष्टि—कूप में मानव उलटे लटका ।
सदा देखता अपनी छाया अपने पथ से भटका ॥ ४१॥

यह निजस्व दानव बन सबके सम्मुख सहज खड़ा है ।
सबको तुरत निगलने को अनचीन्हा आप अड़ा है ॥ ४२॥

रति का अंकुर विकसित होकर बनता वृक्ष निराला ।
वट—सा नित्य नवीन बड़े कुल का सर्जक रखवाला ॥ ४३॥

जिसकी घनी छाँह में सोते हैं अनगिन वनचारी ।
शाखाओं में नीड़ बनाते खग करते कुलकारी ॥ ४४॥

मैंने अपना सब कुछ प्रिय पद—तल में किया समर्पण ।
सहज शृंगार सँवारा करती थी उनके मन—दर्पण ॥ ४५॥

मर्यादा में रहे सदा वे, राज—काज सब करते ।
वन—प्रवास की विरह—दुपहरी बीती ढरते—ढरते ॥ ४६॥

अचल शिला थी अवधि, दूर थी मैं बन्दिनी बिचारी ।
पछतावा पाथेय साथ में रहा सदा व्यवहारी ॥ ४७॥

प्रतिक्षण प्रिय ने मन—मन्दिर में मुझको स्थान दिया है ।
मेरा आनन—ओप—स्मरण कर हृदय न खिन्न किया है ॥ ४८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फिर यह कैसी सहज निठुरता प्रिय ने मुझसे ठानी ।
सबके आत्माराम, बेरुखी केवल मुझसे मानी ।। ४९।।

रावण के कारागृह से मैं जबसे मुक्त हुई हूँ ।
मन से अबला बनी और तन से भी छुई–मुई हूँ ।। ५०।।

देख रही हूँ तबसे मैं प्रिय को अनचीन्ही लगती ।
मधुर ज्वाल अन्तर से उठने को बेचैन सुलगती ।। ५१।।

नहीं अन्यथा, प्रिय की मैं स्वाराज्य–ज्योति थी न्यारी ।
सहज स्नेह मधु–सरिता–पोषित प्रभा–वलय सुखकारी ।। ५२।।

मेरा मन रखने को माया–मृग का जो अनुधावन–
किया प्राण–प्रिय ने गुनकर भी असुर हठीले का प्रण ।। ५३।।

खग–मृग, जल, पत्ती–पालव से गहबर कंठ बिलखते–
पूछा मेरा पता, नीर नयनों से झरते–झरते ।। ५४।।

मुझे छुड़ाने भीति–पाश से यम–दुर्द्धर रावण के–
विषधर पंखी बाण सजग ही तरकश में जो खड़के ।। ५५।।

किया युद्ध जो विकट घोर घनघोर जलागम जैसे ।
उनकी प्रेम–प्रतीति कहाँ तक आँक सकूँगी वैसे! ।। ५६।।

विजयी हुए राम जब लंका पद–तल उनके आयी ।
जाने कैसे, कुमति कहाँ से उन्हें सूँघती आयी ।। ५७।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अब वे प्रियतम नहीं रहे, प्रभु थे, शास्ता थे, नृपवर ।
भू–मण्डल की जयश्री नतमुख उन्हें निरखती सादर ।। ५८।।

वहाँ न कोई प्रजा रही, परिजन या स्वजन नहीं थे ।
मात्र लखन अनुगत स्वभाव से निर्मल धीर मही थे ।। ५९।।

प्रियतम के इच्छा–इंगित में आत्म–विभोर बिचारे ।
वानर उनका मुँह तकते थे या रहते मन मारे ।। ६०।।

यह प्रियतम का विजय–दर्प था या झूठी मर्यादा ।
जिसने उनको पहले जैसा रखा न सीधा–सादा ।। ६१।।

वहाँ विभीषण जाम्बवान् कपिप्रवर धर्मव्रत धारी ।
देख रहे हैं, छली जा रही एक अभागिन नारी ।। ६२।।

यह सतीत्व की माँग पुरुष की कैसी निर्बलता है !
वह भी अबला से जिसमें सम्मानित दुर्बलता है ।। ६३।।

दुर्बल नारी–देह लिये अपने से ही जो हारी ।
कैसे अग्नि–परीक्षा दे, परतन्त्र निरीह बिचारी ।। ६४।।

दुर्बल है वह भले देह से, मन से हीन नहीं है ।
पुरुष जाति के सम्मुख नारी रंचक दीन नहीं है ।। ६५।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेरा भी था स्वाभिमान जग गया उसी क्षण सोया ।
जो अबतक प्रिय के तन–मन में अपना सुध–बुध खोया ।। ६७।।

हुई समिद्ध शिखा नारी के स्वाभिमान की चंचल ।
अग्नि–वसन से घिरा चतुर्दिक् लहराता था अंचल' ।। ६८।।

मुक्त केश था, जगमग मुख था, खिली–खिली ताराएँ ।
निर्निमेष हतप्रभ लखती थीं नभ से सुर–ललनाएँ ।। ६९।।

नारी का विश्वास प्रेम का, करुणा–विगलित मन का ।
अपनी महिमा में विलसित ज्योतित था सूर्य सुमन का ।। ७०।।

सबने देखा सहज आत्म–विश्वास करुण सीता का ।
चमक रहा था ज्योति–वलय बन ममता की गीता का ।। ७१।।

प्रिय नत–आनन दबे हुए मन विजड़ित शिथिल खड़े थे ।
लखन लाल की आँखें छल–छल आँसू बड़े–बड़े थे ।। ७२।।

कपि करतल–लम्बित मुख नीरव विवश बिसूर रहे थे ।
जाम्बवान् सुग्रीव कठिन पल कैसे पूर रहे थे ।। ७३।।

चढ़ी हुई थीं जानुधानियों की भौहें बल खायी ।
बन्दनवार नेत्र की उनके असित घटा–सी छायी ।। ७४।।

धूल उड़ी थी विकट धरा से गगन विकल गरजा था ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धूल उड़ी थी विकट धरा से गगन विकल गरजा था ।
घात और प्रतिघात परस्पर लिये पवन तरजा था ।। ७५।।

रही सुलगती पार्थिव अम्बा अन्तर की ज्वाला से ।
विवश देखती थी तनुजा को घिरी ज्वाल–माला से ।। ७६।।

उन्हें कलपते देख प्राणमय सबमें व्याप्त हुताशन ।
चन्दन–चर्चित गोद लिये मुझको देते अपनापन ।। ७७।।

प्रकट हुए । वे माँ के अग्रज मेरे केवल मातुल ।
किया समर्पित सुभग आर्य को मेरी काया निर्मल ।। ७८।।

मैंने उस घटना को प्रिय की दुर्घट लीला गुनकर ।
सतत हो गयी थी अशंक उनकी लीला में रमकर ।। ७९।।

नभ–सा व्यापक और उदधि–सा गहरा उनका जीवन ।
क्रीड़ा कर कूजन करती थी मैं लघु जल–पक्षी बन ।। ८०।।

लोक–प्रवाद ज्वार अँगड़ाई लेकर जो उठ आया ।
उसने जल की भैरवता का कुछ अनुमान दिखाया ।। ८१।।

जाना, जीवन में रुकने को कहीं न कोई गति है।
जाना, अपना मूल स्थान ही एकमात्र सद्गति है ।। ८२।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर, मैं तो इस बियावान में बैठी आँखें फाड़े ।
मेरी तरल पुतलियों पर छा रहे अचानक माड़े ॥ ८३॥

पाँव भरे हैं, मातृ—महोत्सव का दिन निकट पड़ा है—
जो नारी के जीवन का दिन सचमुच बहुत बड़ा है ॥ ८४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तृतीय सर्ग

ब्रह्म वेला में जगे जनता जनार्दन जा विराजे सौध मौलि अलिन्द ।
सिद्ध सिंहासन बनाकर नयन मूँदे लगे लखने चित्त दीपस्कन्द ॥ १॥

किन्तु चित्त न आज था स्थिर, खिल न पाये सम सुहृद के, आत्मनिर्भर फूल।
घिर रहा था चित्त लोक–प्रवाद घन से, बन रहा था जो अलक्षित शूल ॥२॥

दिया था संवाद गोपक ने भयातुर यामिनी के मध्य पहुँच उपान्त –
'राजमहिषी रहीं लंकाधीशपुर में अरे इतनी अवधि नित एकान्त ! ॥३॥

क्या अछूती रह सकी होंगी ? कदापि न, कामदृप्त मदान्ध रावण मूढ'
साध्वियों पर पुरुष ताने कस रह थे किन्तु चुप्पी थी नगर में गूढ़ ॥४॥

सो रही थी सीय उस क्षण नींद–निर्भर शिथिल भावी प्रसव के उल्लास–
नयन से जलधार जो अविरल बही थी, हो गयी थी नींद निपट उदास॥५॥

कुछ धुँधलका हो चला था देखते प्रभु सौध का आकार और प्रकार
तूल जैसे वायु का अवलम्ब लेकर, जा टिका हो, अधर में निराधार ॥ ६॥

चमकती थी, लहर सरयू की रजत–सी किन्तु उसमें था न कुछ अपनत्व ।
सिहरता बह रहा मंथर पवन जैसे लिए जाता राम का सब सत्त्व ॥ ७॥

उषा आयी और बाल प्रभात आया मचल इठलाया सुवर्ण विहान
धँस रहे थे प्रभु अनागत के विवर में खो गया था दिव्य अपना भान॥ ८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तनिक तन्द्रा लिए सीता जोहती थी दयित को, आये न हुई अधीर।
उठी झटपट पहुँच सीधे उपरले तल सजल देखा– थे न वे रघुवीर ॥ ९॥

प्रभु खड़े अवसन्न जैसे स्थूण अविचल, नेत्र विस्फारित क्षितिज की ओर–
देखते थे खोजते कुछ बिन्दु पथ के, भविष्यत् के कुहर में घनघोर ॥ १०॥

काँप अन्तर में अवनिजा ने बढ़ाये पैर, प्रिय–आश्लेष के अभिमान–
कर सकी बस स्पर्श दयित–कपोल का कर–पृष्ठ से,खो गया अपना भान ॥ ११॥

हो सजग ले अंक प्राणाधीश्वरी को लगे करने राम मृदु उपचार
कलित कुन्तल राशि में फिरती उँगलियाँ हो रही थीं शिथिल बारम्बार ॥ १२॥

झुकी जाती थी अवनिजा राम के तन व्यर्थ था दृढ़ दयित का उर–स्कन्ध
गिर रहे थे अश्रु भर–भर राम के, भंगुर हुआ था सुदृढ़ धीरज–बंध ॥ १३॥

हुआ संवेदन तनिक जो ऊष्णता का हुई झट से अलग विकल अधीर
देखती थी प्रिय वदन की ओर सूनी आँख, जिस पर भाव था गम्भीर ॥ १४॥

बरसता था मुख सुहास–कदम्ब निर्भर और झरता था नयन से नीर
"क्या हुआ प्रिय? सच कहो, यह अशुभ कैसा कट गयी जब विपद की सब भीर"॥ १५॥

"कुछ नहीं तुमसे मिलन की साध जो आधी–अधूरी, आज है भरपूर
उमहता जब हृदय तब चुप रह न पाता वेग से बहता नयन जलपूर ॥ १६॥

खिल–खिलाकर अवनिजा के हाथ लेकर हाथ प्रिय का चली सहित उमंग
देखती जा रही प्रिय के नयन जिसमें दीखता था अब न वैसा रंग ॥ १७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राम सिंहद्वार पहुँचे जोहती थी जहाँ बैठी दरस–आकुल भीर
सारिका के पास सीता गयी जिसका उड़ गया था कुछ दिवस से कीर ।। १८।।

बीतती है रात आता दिन सुनहला, साँझ आती ले सुनहरी कान्ति
इन्द्रनगरी–सी अयोध्या सरसती है बरसती है शील–सम्भृत शान्ति ।।१९।।

समिध संपुट लिये दूरागत विपुल वटु आ रहे नित रामपुर की ओर
वामदेव वशिष्ठ के पादान्त, जिनमें जग रही स्थितप्रज्ञता की भोर ।। २०।।

पर्णछादी यज्ञशालाएँ मनोहर दीप्त होतीं दिवस के अभिसार
शयन करतीं सूर्य को अन्तिम नमन कर खुले है जिनके अहर्निश द्वार ।। २१।।

राम राजिव–नयन नर–शार्दूल जैसे हैं विराजित अयोध्या के धाम
रात–दिन बस घिरे रहते हैं प्रजा से रंजना हित, जो समाहित काम ।। २२।।

राम जन–अभिराम जिसमें हों विराजित शील और उदारता के मान
वहाँ अनुशासन भिखारी बन खड़ा है आत्मशासन दे भला क्या दान ! ।। २३।।

बोध अपना हो भला कैसे प्रजा को सम्भरित सम्भूति के परमाणु –
चित्रमय रचना–विभूति निहारती थी नील नभ, उडुगन, कुहू, शशि, भानु ।। २४।।

दिवस के अनुराग से पूरित अयोध्या नित्य लखती रामचन्द्र नवीन
विभव–विभु के ओप–मण्डित चित्रसारी नहीं जिसमें तुच्छ तृष्णा दीन ।। २५।।

भूमि रमा–निवास की जैसी रमी थी नहीं वैसे रम रहा रनिवास
दिवस अपलक जागती थी शान्त सीता शान्त अपलक गहन–नैश–निवास ।। २६।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राम वैसे ही सजल अनुरागमय थे नित्य बढ़ता जा रहा था प्यार–
सीय के प्रति । देखते थे गृह–महोत्सव दे रहा है प्रिया को अँकवार ॥ २७॥

पुत्र–बत्सल प्रीति मन–कन्दुक उड़ाकर कभी रचती कल्पना का नीड़
कभी लोक–विभर्त्सना कात्यायनी–सी पददलित करती उसे कर मींड़ ॥ २८॥

राम तब होते सजल सव्रीड़ होता तुरत उनको पुरुष उत्तम भान
पर न कोई लक्ष्य पाता चरित उनका हृदय जिनका हो रहा था म्लान ॥ २९॥

प्रभु–हृदय की नित्य साक्षी सरल सीता को हुआ ज्यों काल है विपरीत
इस सुनहले रंग पर अपना न कोई, चिर–सहचरी नियति ही बस मीत ॥ ३०॥

एक पल आशंक के घन घिरे होते भविष्यत् के, जो अबूझ उपाय
दूसरे क्षण खिलखिलाती मातृकलिका चूमती शिशु का वदन–समुदाय ॥ ३१॥

"भार सकल वसुन्धरा का जो सहेजे, नाम पृथ्वी, मातृदेवि उदार
राजती विश्वंभरा बनकर जगत में रीति रचती नीति के व्यवहार ॥ ३२॥

धरा, धरती या धरित्री नाम जिसके दाम जिसका धातृ–सुलभ स्वभाव
पुत्र–वत्सलता–समीरण से सिहरती डोलती है भरी ममता चाव ॥ ३३॥

लाडली हूँ मैं उसी की आत्मजा हूँ मिला जिसको धैर्य का उपहार
नहीं जिसमें शोध का है लेश रंचक चित्त जिसका ही बना अविकार ॥ ३४॥

सजल सीते! तू भला क्या खिन्न होगी, जगत् देगा क्या तुम्हें उपहार !
शाप, शासन, कलिल कुत्सा, काम–कुल्या याकि नश्वर भासमान श्रृंगार ॥ ३५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किन्तु सुमगे! रीति वह तेरी नहीं है नीति माता की अकेली मान
धीरता के मान ने तुमको रचा है बस तितिक्षा ही तुम्हारी आन ॥ ३६॥

दिया है वरदान विधि ने तुम्हें भारी मातृता का आत्म–गौरव पूर्ण –
जो लुटाती विश्व भिक्षुक को सरलता सहजता से शान्ति–सुख सम्पूर्ण ॥ ३७॥

अनति, आकांक्षा, असूया या स्पृहा से मोह मत्सर–मान–मद से दीन –
हो जगत्। यह चिर निरत व्यापार उसका हृदय–ह्रद बन रहा दिन–दिन दीन ॥ ३८॥

किन्तु सीते! भूमिजा–प्रतिमूर्ति हो तुम सहनशीला, सर्जना में लीन
स्वच्छ आत्म–प्रसादिनी की तरल धारा बह रही तुममें नवीन–नवीन" ॥ ३९॥

गत हुआ सपना दिवस का, देखती थी नील–निर्भर तदपि नीलाकाश
पैर पर दे भार तन का कुछ झुकी–सी, हाथ कटि पर, स्व च्छ नयन–प्रकाश॥ ४०॥

हुई संयत सहज शील सहेज सीता चली सम्मुख सदन ओर सलील
मुख कमल कुड्मल–विहास बिखेरता था रास करता ज्यों मनोहर खील ॥ ४१॥

देखती थी अवनि को, अपनी प्रसू को वक्ष जिसका खुला सतत अमेय।
जो पुलकती है सदा नव वल्लरी–सी नहीं कोई वस्तु जिसे अदेय ॥ ४२॥

हुलसती आयी खुली थी चित्रसारी 'अभी आकर हैं विराजे देव'
वीजना ले लगी झलने पवन शीतल लुप्त था सब परस्पर का भेव ॥ ४३॥

दिन सुनहला रात रूपहली मनोहर कभी आती है सलील सुशान्त
यामिनी के नयन–उत्सव–सी मनोहर सत्त्व–सम्भृत सृष्टि रचती कान्त ॥ ४४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कभी लेकर अमा रानी से मधुर श्रृंगार–कज्जल ज्यों अकूत उधार
नील चादर तानती है जब धरा पर देखते तब नखत नयन उघार ॥ ४५॥

बही जाती है धवल कल्लोलिनी निर्बाध जैसे बहे हास–विलास
बहे जैसे स्वच्छ सात्त्विक प्रीति प्यारी लिये अन्तर का समृद्ध हुलास ॥ ४६॥

नाचते हैं मोर छज्जे पर सुहाते सारिका की बोल पर दे ताल
वापिका में हंस मुक्तामाल चुगते, नृत्य करते, चरण जिनके लाल ॥ ४७॥

हंसिनी बढ़ती तरी–सी स्पर्द्धिनी ज्यों जा पहुँचती दूर तट के पार
किन्तु चलता हंस वैसे मन्द–मन्थर परस्पृहा का नहीं कुछ व्यवहार ॥ ४८॥

बीतने दिन–रैन, सायं–प्रात भी थे बीतते, गतिमान रहता काल ।
जगत् के व्यवहार सारे बीत जाते, रीत जाता कर्म–फल विकराल ॥ ४९॥

किन्तु मन–मृग तो चपल रहता सदा ही पवन का खड़का बनाता भीत
मन बली हो तो रहे निर्द्वन्द्व जग में चले कैसी भी बड़ी अनरीत ॥ ५०॥

राम–सीता नित सहज रहते परस्पर भाव रखते परस्पर समवेत।
शयन, भूषण, अक्ष–क्रीड़ा समज्या में सहज शील–स्नेह निरत सचेत ॥ ५१॥

प्रथित होता जा रहा था राम का ज्यों लोक–अपवादी हृदय का घाव
स्थूण जैसे लहलहाता जा रहा था वल्लभा से बिछुड़ने का चाव ॥ ५२॥

भूमि–सी समतल सरल सीता निरखती राम का उत्फुल्ल मुख–अरविन्द
बह रही थी निभृत प्रेम–पयस्विनी में बहे जैसे लघु तरी निस्पन्द ॥ ५३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चतुर्थ सर्ग

आया वसन्त मधु–उद्दीपक बन सरस रहा,
तृण लता कुंज वीरूध तरुवर की डाली पर।
सब हरे–भरे करते सराहना आपस में,
आमोद भरे नव देह–कल्प जैसे लेकर ॥ १॥

यौवन का राग लिये सुघराई चमक रही
जो झलक रही थी बरबस पर्ण–कपोलों पर
लहलही लता का वृन्त बड़ा ही इठलाया
था मचला तरु की डाल नवाने को सत्वर ॥ २॥

कुंजों पर मीठी थपकी दे दक्षिण समीर
बहता था मंथर कुंजर जैसे चले मन्द
भौंरों के अनगिन झुण्ड दौड़ते जाते थे
माँ के पीछे गज–शिशु जैसे दौड़ें अमन्द ॥ ३॥

किंशुक मधूक कचनार बकुल केतक रसाल
मंजरियों से लद गये अलक्षित हुई डार
नव–नव कलिकाएँ चटक रहीं ज्यों नवल वधू
विभ्रम से घूँघट को सहसा देती उघार ॥ ४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उड़ता पराग ऋतुराज महोत्सव में विभोर
छक रही दिशाएँ, जनपथ वासन्ती सुगन्धि
सहकार–मंजरी बरस रही थी मधु के कण
मानिनियाँ प्रणयी से करती थीं विकल सन्धि ॥ ५॥

सरयू उपान्त माधव–मधु का उन्माद लिये
पागल पलाशवन आलक्तक रंजित अछोर
या उफनायी थी विरह–आग धरती ऊपर
छूने को ज्यों व्याकुल हो नभ का ओर–छोर ॥ ६॥

कैरविनी हँसती थीं सरसी में सरल हँसी
राका रानी की जो अनुगत चिर सहचरियाँ
कल्लोलिनि सरयू की लहरों की भेद–भरी
बातें सुनती थीं पत्तों में दुबकी परियाँ ॥ ७॥

बढ़ रहा मोद–आमोद अयोध्या में अनुदिन
रसराज बरसने मधुर मास जो आया था
क्रीड़ा–निकुंज, उपवन–संकुल, वन–वीथी में
सम्मर्द और कोलाहल कलरव छाया था ॥ ८॥

बौरे रसाल बौरी कोयल थी कूक रही, बेरोक
नाचते थे मयूर वन के उपान्त
उन्मुक्त हुई ज्यों प्रकृति–नटी थी नाच रही
खुल गये निगड, मर्यादाओं का हुआ अन्त ॥ ९॥

मर्यादा पुरूषोत्तम जो अपने में अमेय
मर्यादाओं के स्रष्टा और सजग प्रहरी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थे सावधान, ऋण—शोध प्रजा का करना था
हो प्रजा भले वाचाल,भले कितनी बहरी ॥१०॥

था अंधकार,नभ में प्रमुदित थीं ताराएँ
सरसीरुह का कर स्पर्श पवन था डोल रहा
बढ़ गयी रात थी जन—रव बेसुध सोया था,
सन्नाटा था सब ओर, न कोई बोल रहा ॥११॥

मणियों से मण्डित मन्दिर जगमग करता था
प्रणयी से सीता राम वहाँ कुछ खेल रहे
हंसाकृति दीर्घ पलँग पर दोनो बैठे थे
प्रभु सीता की अलकों में अँगुली मेल रहे ॥१२॥

सीता बेसुध मातृत्व—मोद से अलसायी
शिशु के स्वागत की घड़ी निकट जो आयी थी
स्वामी का क्रीड़ामय कौतूहल देख आज
अपने में अपने से ही निपट लजायी थी ॥१३॥

करते प्रिय संभाषण रघुबर बोले गम्भीर
"आर्ये! बतलाओ इस क्षण तुम क्या चाह रही
सोयी या दबी हुई अभिलाषा की तरंग
बाहर आने को जिसे न अब तक राह रही ॥१४॥

दिनमणि-वंशज की भावी जननी! हो निशंक,
दोह्द पूरा करना है मेरा धर्म आज
मन का शैथिल्य कहीं शिशु का अनहित न करे
उसके हित तज सकता हूँ मैं फिर से स्वराज"॥१५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आर्जवशीला सीता सुन प्रिय का सम्भाषण
गद्गद थी क्रीड़ोन्मुख था मन–शिशु का कुरंग
था रहा न उसको भान, विरस पल था व्यतीत।
बहती सलील थी वर्तमानता की तरंग ॥ १६॥

होकर प्रसन्न बोली, जैसे बन्धूक खिला
उपवन के नीरव कोने में हँसता समोद
तृण, विटप, दुपहरी, त्रिविध समीरण का चुपके
सम्मान कर रहा हो मन में भर–भर विनोद ॥ १७॥

"मन विपिन चंक्रमणशील आर्य! मेरा मन क्या
है तनिक भिन्न भी तुमसे,तुम ही बतलाओ
जो चाह रहे हो तुम वह मेरी अभिलाषा,
नारी का मन रहता अबूझ–मत कहलाओ" ॥ १८॥

थे राम अड़े दोहद को पूरा करने को,
सीता उनसे विनती कर पीछा छुड़ा रही।
चल रहा मनोहर क्रीड़ा–द्वन्द्व युगल का था।
सीता अपने अन्तस्तल को थी जुड़ा रही ॥ १९॥

जो होना है उसको विधि ने पहले से ही,
ऋत की यंत्रित मंजूषा में रक्खा सँभाल।
हम दोष परस्पर देते, अपनी आँखों पर,
हंकृति का दुर्भेदी ऐनक है लिया डाल ॥ २०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हारी सीता, बोली भरकर मन का हुलास,
"हूँ आप्तकाम सर्वथा तुम्हारी श्री बनकर।
प्रभु नयन–कोर को देख–देख मैं सदा तृप्त,
सिन्दूर माँग का मेरा श्री–पद–रज भास्कर ।। २१।।

दोहद पूरा करना ही तुम यदि चाह रहे,
प्राणेश्वर! तो सुन लो मेरी नवस्पृहा दीन।
मैं भूमि–सुता, यह देवस्पर्द्धी राजभवन,
अन्तःपुर,मणिगृह, प्रमद–वाटिका चिर नवीन ।। २२।।

मैं ऊब गयी हूँ इनसे जबसे आई हूँ
जैसे दिन–दिन होती जाती हूँ सत्त्वहीन
मन बहलाने को चाह रही हूँ नयी भूमि
हों विटप नये, जलवायु नयी, जन भी नवीन ।। २३।।

लेकर प्रभु भाग्य–प्रसाद राज–प्रासाद छोड़,
जब चलकर पहुँचे थे तमसा के पुलिन तीर।
थी अरण्यानिका दिखी बड़ी मन को भायी,
मैं उसे देखने को होती जाती अधीर ।। २४।।

निज दशा देख कैसे मैं मन की बात कहूँ ,
यह नहीं गर्भिणी नारी का कुछ शुभ विचार।
चौदह संवत्सर बीते हैं वन में भटके,
कुल रहे अचल, समझो इसको मन का विकार ।। २५।।

कुलदीपक और अयोध्या का जन–मन–रंजक,
प्रभु के समशील स्नेह की चिरअभिलषित साध ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेरी काया में पलने वाला शिशु मेरा,
जग की माया को लखने को व्याकुल अबाध ॥ २६॥

वह सुखी रहे, भरपूर पिता का प्यार मिले,
माँ की ममता, गुरु–चरणों के पावनरज–कण
इच्छा है जाऊँ मैं तमसा–तट पुण्यभूमि
जो ऋषिकुमारकों का उच्छल क्रीड़ा–उपवन ॥ २७॥

देकर उनको फल–फूल और मिष्ठान्न मधुर
क्रीडनक चित्र, कर तिलक पिन्हाऊँ मनिक–माल।
वत्सलता की छाया में मन–मृग बहलाऊँ,
नव रस भर लूँ रजस जीवन घट को खँगाल ॥ २८॥

ऋषिभूमि सतोमय, ऋषिकाओं के विमल भाव,
उज्ज्वल सुकृतों से मंडित मुख को नमन करूँ
आज्ञा हो तो बहुअन्न पटंबर आभूषण,
ले जाऊँ आशिष लेकर उनके चरण धरूँ" ॥ २९॥

"यों ही होगा"–कह राम उठे हट गयीशिला
जो दबा रही थी अब तक मन को अन्तहीन।
निष्प्रभ नयनों से लगे देखने थे नभ को,
ज्यों खोज रहे अपना परिवर्तित पथ नवीन ॥ ३०॥

यों गये राम आँखों में ले उल्लास नवल,
मन पत्थर–सा जम गया न जिसमें रंच स्नेह।
थे राजमुकुट, कौशेय वसन, आभरण वही,
चैतन्य न जिसमें, चलती–फिरती विपुल देह ॥ ३१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रह गयी देखती पैरों के नख भूमि–सुता,
रसना निरुद्ध, आँखें कुछ–कुछ थीं सकुचायीं।
दोनों कुल की मर्यादा का जो हुआ भान,
गड़ गयी आप,आँखें कुछ–कुछ नम हो आयीं ॥ ३२॥

प्रभु ने बुलवाया, भरत श्रेष्ठ सानुज आए,
बोले–'ले जाओ जनक–नन्दिनी को तुरन्त ।
तमसा–तट पर निर्वासन दे आओ सुभद्र !
कुछ खेद नहीं,नृप–नय होता ही है दुरन्त' ॥ ३३॥

सुनते ही मूर्च्छित भरत और शत्रुघ्न हुए,
घबराए राघव किन्तु प्रथम अनुशासन था ।
जो देर हुई पुरजन–परिजन में बात गई,
आशंकित थे, दुर्लभ सीता–निर्वासन था ॥ ३४॥

राजीव–नयन रघुराज विराजे निज गृह में,
सन्देश गया, लक्ष्मण दौड़े–दौड़े आये।
"भैया!क्या है आदेश मुझे झट बतलाओ,
यह अनुज आज कुछ सेवा का अवसर पाये" ॥ ३५॥

जब हुए प्रतिज्ञाबद्ध,राम ने देख लिया,
वह लक्ष्मण थे या उनकी जीवरहित काया ।
जो उनके हिलने से हिलती या स्थिर रहती,
वह रूप लखन का राघव को अतिशय भाया ॥ ३६॥

"लक्ष्मण!सेवा आवश्यक है, रथ सजा शीघ्र
लाओ, तब तुमको दूँगा मैं आदेश नया ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह मर्यादा पुरुषोत्तम राघव बोल रहे,
मद–विह्वल नृप की शोध–रहित भाषा है क्या"॥ ३७॥

थे खिन्न लखन राजाज्ञा का स्वर उग्र देख,
कुछ समझ न पाये,अनुगत सिर था झुका हुआ ।
ज्यों कमल साँझ की वेला में नतमस्तक हो,
प्रतिबिम्ब देखता जल में किंचित् रुका हुआ ॥ ३८॥

"जो आज्ञा" कह लक्ष्मण ले आये रथ झटपट,
जो कनक–वलय आकार लिये था प्रभापूर्ण ।
हिंकारी करते श्यामकर्ण घोड़े जिसमें –
थे जुते हुए,शिंजिनी बजाती मधुर तूर्य ॥ ३९॥

बोले राघव–"हे मेरे चिरलालित अनिन्द्य !
लक्ष्मण सुवीर ! जैसा कहता हूँ करो आज।
सीता को ले जाना है मुझसे, बहुत दूर
मत देर करो, अपने प्रयाण की करो साज ॥ ४०॥

जो सघन अरण्यानी में बहती है,नीली
धारा जिसकी, जिसमें ह्रद घूर्णित हैं गँभीर।
सीता को सूनी तमसा के तट छोड़ लौट
आओ तुरन्त,जनता की जिसमें हो न भीर"॥ ४१॥

रह गये स्तब्ध लक्ष्मण सुनकर यह वचन दण्ड,
भूला अपान, धँस गयी धरा थी पग–तल की ।
मुख रहे निरख प्रभु रामचन्द्र का ओज भरा,
दृढ़,दीप्त, दान्त,जिसमें न लहर थी हलचल की ॥ ४२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"यह राजाज्ञा है, नहीं तात की बात अनुज,
मत करो देर, सीता अन्त:पुर में आकुल"।
होकर सचेत लाघव से करतल धनु सँभाल
लक्ष्मण जाकर गिर पड़े भूमिजा के पगतल ॥ ४३॥

"क्या हुआ आर्य!" मैथिली अंक में भरउनको
बोली "सुख से हैं तात तुम्हारे बड़े वीर ?"
लक्ष्मण स्थिर हो बोले "आर्ये ! न विलम्ब करो,
रथ सजा हआ वन–अटन कराने को अधीर।" ॥ ४४॥

होकर प्रफुल्ल, सीता दुकूल परिधान साज
किंकिणि नूपुर रशना मुँदरी कल कनक दाम।
चल पड़ी लखन के साथ चरण द्रुत ताल लिये
मन में हिलोर,उसको न भान विधिचक्र वाम ॥ ४५॥

थी निकट आ रही मातृ–महोत्सव की वेला,
मन मोद भरा किलकारी करता था अपार।
सीता के मन में उठती थी आनन्द–लहर
सुख के संचारी खग करते थे जल–विहार। ॥ ४६॥

सीता ने माताओं का चरण–स्पर्श किया
आंशिष 'सुहागिनी हो' आँचल में लिया डाल।
रक्तांशुक में झिलमिला रहा वदनारविन्द
ज्यों भोर–चन्द्र, माथे पर रोली चटक लाल ॥ ४७॥

फिर गृह के अधिष्ठातृ को अंजलि–अर्घ्य दिया
परिक्रमा भवन की करके सीता मोदमयी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भेंटने आर्यसुत को जब उद्यत हुई तुरत
लक्ष्मण ने वर्जित किया, कहा–'मन्त्रणा नयी ॥ ४८॥

प्रभु उलझे होंगे, भामिनि अब न विलम्ब करो'
सीता ने मन में राघव का सन्धान किया।
थी सहज भावना, नमन परस्पर, मृदु कटाक्ष,
लक्ष्मण के रथ की ओर सरल प्रस्थान किया ॥ ४९॥

"सारथी अनुज !" यह देख भूमिजा चकित हुई
बोली तुरन्त "क्या सारथियों का है अकाल?
हे वीरव्रती ! तुम नरपति प्रभु के सिद्ध हाथ
क्यों निभृत एक चलते हो नीचे शस्त्र डाल। ॥ ५०॥

हैं पैरों में पदत्राण नहीं, मुख भी मलीन
हैं काकपक्ष बिथुरे, गजरों का हार नहीं।
तुमने चुपके ही चुपके चलने की ठानी !
यह अटन विपिन, बातों का हो व्यवहार नहीं ? ॥ ५१॥

कुछ नहीं बोलते? आर्यपुत्र ने कुछ तुमको
चुप रहने की विद्या जैसे हो सिखलायी।
मैं धरा–पुत्रिका धीरज की ही मान बनी,
जो भेंट मुझे, मेरे मन को वह ही भायी।" ॥ ५२॥

लक्ष्मण चुप थे, चुप था संशय उनके मन का,
चुप थे पन्थी, पक्षी–गण का कलरव चुप था ।
आकाश और धरती चुप थे, चुप दिग्–दिगन्त,
सरसी, सरसी–रुह, सारस का संकुल चुप था ॥ ५३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर चुप न वहाँ लक्ष्मण का मन, उठता बवण्ड,
सन–सन करता था पवन,रथ उड़ा जाता था।
पुस–सीमा ओझल हुई,आ गया राजमार्ग
सौमित्र–नेत्र सम्मुख न लक्ष्य टिक पाता था ॥ ५४॥

'कुछ तुनक गये हैं राजकुँअर,अस्थिर स्वभाव,
दुलरैता माँ के,हो जाएँगे सहज शान्त'।
साध्वी सीता लखती थी वनराजी प्रसन्न
सीमन्त सजाती रजत–चूर्ण से भरी कान्त ॥ ५५॥

मधुमास सजा था नवल पण्य लेकर नव–नव
रचना विचित्र वनदेवी रूप सँवार रही।
उस निभृत मनोहर एकाकी वन–प्रान्तर में
हो आत्म–मुग्ध–सी अपना रूप निहार रही ॥ ५६॥

फूले मधूक, बौरे रसाल, मधु गूँज रहे,
पिक डाली में छिपकर कू–कू करती अधीर ।
धरती का आयत वक्ष सुनहरी आभा ले
कहता था 'बैठो पथिक, बुलाता है समीर' ॥ ५७॥

शैवालिनि तमसा गंगा का संगम आया,
रथ छोड़ लखन खाली नौका पर गए बैठ ।
सीता बैठी, लक्ष्मण ने ली पतवार थाम,
घूर्णित मुख थे, मन धँसता जाता रहा पैठ ॥ ५८॥

जानकी चकित थी, देख सलिल की महाराशि
प्रतिपल सलील लहरों से आमन्त्रण करती ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूसरे कूल पर अटवी जल में झूल रही
साँवरा वदन श्यामल जल–दर्पण में लखती ॥ ५९॥

तमसा–तट आया, दुर्गम पथ, पाषाण–खण्ड,
सूखी रेतीली कुल्यायें, विस्तृत कछार,
तंटिनी विशाल कल्लोल राग गुनगुना रही
थी छिपी श्याम–सलिला क्षुप–संकुल के अगार ॥ ६०॥

आ गया तीर, लक्ष्मण ने जल में टेक दिया,
रुक गया यान ।"आर्ये उतरो" स्वरकम्प भरे–
बोले लक्ष्मण नत–नयन शिथिल तन कंठ–रुद्ध
दिङ्मण्डल में खग पंख फड़फड़ाकर बिखरे ॥ ६१॥

सीता हतप्रभ, चुप लखन, काठ के पुतले ज्यों
संवादी लेख प्रकृति का था संवादहीन
नयनों से झरता निर्झर था अविरल प्रवाह,
जो सतत दर्प से दीप्त आज इतना मलीन ! ॥ ६२॥

"लक्ष्मण ! मेरे शुभ लक्षण ! प्यारे अनुज ! बता
क्या हुआ तुम्हें? मैं ही हूँ तेरे एकाकी –
मन की सच्ची साथी, तू मेरा दुलराया
नटखट है, तेरे लिये न कुछ भी है बाकी।"॥ ६३॥

बरबस फूटा निर्झर नृप–वधू प्रसूता का
लक्ष्मण चुप थे पर चुप न रह सकी थी सीता।
करुणा का ज्वार निकल बाहर आये–आये
जानकी हुई प्रकृतिस्थ राम की परिणीता ॥ ६४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बोले लक्ष्मण, "भद्रे ! जनरंजन राम तुम्हें
वन–निर्वासन के हेतु नियुक्त किया मुझको ।
क्या आज्ञा है, मुझको बतला दो, जाऊँ मैं,
रुकने का कुछ अपना आधार नहीं मुझको। ॥ ६५॥

मैं प्रजा, राम की आज्ञा मेट नहीं सकता
मेरी अंजलि का अर्घ्य देवि! स्वीकार करो
क्षणभंगुर जीवन, सुख–सँजोग है दो दिन का,
सहचरी नियति है, देवि! उसी का मान करो" ॥ ६६॥

स्वर भंग हुआ विह्वल सौमित्र बिलखते थे
यह दशा देख तरुवर थे झड़ते पर्ण दीन
दब गयी धरा, तटिनी का स्वर गम्भीर हुआ,
बोला उलूक, आशाएँ विस्मित थीं मलीन ॥ ६७॥

'हे वनदेवी ! उल्लासभरी तटिनी विभोर !
कल्याणि शिखे ! हे नकुल शुभंकर ! प्रिय कपोत !
हे वन में निर्भर गुंजनकारी चंचरीक !
देखो अब तुम, डगमग है रघुवर–वंश पोत–" ॥ ६८॥

कह, जानु टेक करबद्ध रहे सौमित्र सरल
आँखें निरीह सीता से ज्यों कुछ माँग रहीं
सर्वस्व लुटा जाता लखकर भी वश जिस पर
कोई न रहे, अपनी छाया से भाग रहीं ॥ ६९॥

सीता सब कुछ अब समझ गयी थी, था अबाध –
सूना अनन्त पथ, पथिक श्रान्त, पाथेय नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

था स्वप्न देखना अब प्रिय के चरणारविन्द।
दुलके दो कण, आँखों से फिर जलधार बही ॥ ७० ॥

"जो प्राणनाथ, वे ही प्राणों को हरने को
निर्वासित मुझको करते, यह उत्तम विचार !
शुभ होगी उनकी इच्छा ! वे कल्याणमूर्ति
अपने मन में मैं नहीं देखती कुछ विकार। ॥ ७१ ॥

अबला का क्या सन्देश भला कुछ हो सकता,
आदेश नाथ का पालन यदि मैं कर पाऊँ !
उपकृत्य हुई, मैं बहुत ऋणी हूँ प्रभुवर की,
जाया बनकर उनका कुछ ऋण तो भर पाऊँ ! ॥ ७२ ॥

जाओ शुभ लक्ष्मण ! जाओ, अब न विलम्ब न करो
'सीता निर्वासित' यह सँदेश प्रभु को दे दो !
हो प्रजा सुखी, नारी के भीगे आँचल से
मेरी गूँगी अर्चना—भेंट उसको दे दो ॥ ७३ ॥

मैं धात्री धरती के निमित्त ब्रह्माप्रेरित
त्वष्टा की हूँ कल्पना, धरा की नव प्रतिमा
मानवी सर्जना की छाया से दूर और
देवोपम कृति के हेतु बनी जो मूर्ति क्षमा ॥ ७४ ॥

प्रभु मेरे सद्गुण स्मरण करें यह उचित नहीं,
जन—रंजन में यह ध्यान—भंग कर देगा ही
अनुराग प्रजा का अमृत—कलश बन जाता है
मेरा चिन्तन कुछ भेद—भाव कर देगा ही। ॥ ७५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह त्याग या कि सम्मिलन हृदय–मन्दिर निगूढ
रघुवंश–दीप प्रभु ने मेरे आँचल देकर
भेजा है, माँ की शून्य गोद हर्षित होगी,
धुल जाएँगे कल्मष मेरे, पथ चल–चलकर ।। ७६।।

यह हृदय जानता मेरा और स्वयं प्रभु का
जो परमधाम है दोनों का विश्वास–मूर्ति
यह विरह और यह मिलन जहाँ लुण्ठन करते
क्या कर सकती है काल–कल्पना कभी पूर्ति? ।। ७७।।

कह देना जन–आराधक अपने अग्रज से
जिस हेतु मुझे त्यागा वह उनका श्रेय बने
मेरा सच्चा सद्भाव उन्हें यदि सुहृद लगे
तो राजमार्ग के पन्थी का पाथेय बने। ।। ७८।।

मेरे सर्वस्व सुखी हों,जन सुख–सौरभ से
भर जायँ,अयोध्या नगरी हो धनधान्य पूर्ण
मंगल की वर्षा मेघ करे, सरयू विहरे,
मन के कल्मष जन–जन के सब हो जायँ चूर्ण।। ७९।।

मेरी विस्मृति का ओट करेंगे प्रभु जितना
उतना ही मैं कर क्लेश–कलिल को सहज पार –
बन जाऊँगी नारी जो उनकी चाह रही,
सर्वांगपूर्ण।" सूखी आँखों बह चली धार। ।। ८०।।

"मेरा निर्वासन करते हैं या उसका भी
जो मेरी काया में पोषित हो रहा नित्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो पुरी अयोध्या का भावी संरक्षक है
वह जीव भला क्या कर सकता है अधम कृत्य?।। ८१।।

तुम देखो मेरी ओर लखन मैं मातृमूर्ति
अवलम्ब यहाँ क्या मेरा है,तुम बतला दो
रक्षा मैं कैसे करूँ नाथ के उपकृत का
इस बियावान में नीड़–निलय ही दिखला दो" ।। ८२।।

जड़ थे लक्ष्मण, आँखों में छाया अन्धकार,
चल पड़े जलाशय तीर, झुका था मेरुदण्ड
बोले–"कल्याणी !आश्रम है मुनि का समीप,
मेरी तुमसे कुछ नियति नहीं है कम प्रचण्ड" ।। ८३।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पंचम सर्ग

स्वच्छ नीलाकाश, तले वनश्री राजती है, हँस रही है काश।
'चलो मेरे साथ,'– कह रही है, बह रही है भोर की वातास। ॥ १॥

कुंज और निकुंज, – बढ़ गयी है चहचहाते पक्षियों की भीड़।
ताकते हैं शून्य, जोहते हैं आप्तजन, शिशु विहग बैठे नीड़ ॥ २॥

चित्रभाषा भूमि, दग्ध–धूसर हो चला है नदी का उपकूल।
'स्वागतम् मधुमास', – कह रही है अरण्यानी लिये अँजुरी फूल ॥ ३॥

यह प्रकृति–उल्लास, छक रहा है नयन मूँदे, जहाँ भाषा मौन।
सेवती के फूल, हँस रहे हैं, गुदगुदाकर भागता है पौन ॥ ४॥

सौम्य नील वितान, तना है, नीचे हरी घाटी सजे शृंगार–
देख अपना रूप, मौन माधव से मनाती नृत्य का त्यौहार ॥ ५॥

यही निर्मल देश, बन रहा आवास मुनिवर का असीम उदार।
श्यामनीरा तीर, गोष्ठ, गोकुल, पर्णमण्डप और तोरण द्वार। ॥ ६॥

नदी के उपकूल, वन्य गुरुकुल मौन का संवाद सुनता शान्त ।
ज्ञानमय विश्राम –कर रहा, भर रहा आभा भुवन में अश्रान्त ॥ ७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उच्चरित उद्गीथ गूँजता गिरि–गेह में देकर प्रतिध्वनि तान ।
छेड़ता संगीत पवन भी, ज्यों सुहृद करता ताल लय सन्धान ॥ ८॥

अर्चि–अर्चन हेतु, अरणि चुनने के लिए निकले वटुक दो प्रात ।
यमल रूप किशोर चले जाते थे परस्पर लीन मन की बात। ॥ ९॥

दूर देखा – इन्दु, दिवस–लुण्ठित क्षाम छाया राजती थी दीन ।
जरठ वट के मूल, नत नयन बैठी झुकी कुछ अग्र भाग मलीन ॥ १०॥

सामने उपकूल, सरसता जिस पर दिवाकर का सुनहरा राग–
हँस रहा उद्दाम, तुच्छ करता विरस मन का दर्पहीन विराग। ॥ ११॥

वे अधीर किशोर, थे समुत्सुक जानने को स्थिर न उनके पैर ।
वहाँ देखा वाम, भूमि में रेखा बनाती सोचती निर्वैर ॥ १२॥

रूप–राशि अनिन्द्य, दिव्य पीताम्बर धरे सुग्रीव मुक्ताहार ।
एकवेणी दाम, वाम भाग सँवारती है रूप के अनुहार ॥ १३॥

यह अलक्षित रूप, देख वटु सम्भ्रमित थे लखते परस्पर भाव ।
चुप न था अब एक, रुक भला सकता कहीं मृदु चित्त का सद्भाव ॥ १४॥

"भद्रिके! शुभमूर्ति !" तान टूटा ध्यान का आभास 'कोई और' !
चौंक सम्भ्रमशील हुई असहज में सहज–सी, स्थिर न मन की भौंर ॥ १५॥

'यहाँ पुर या ग्राम!' और देखा नवल वय वटु रूप दिव्य ललाम ।
हुई तब आश्वस्त, बही माँ की मोद–धारा जो सदा निष्काम। ॥ १६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किन्तु समय विचार, देखने लग गयी सम्मुख क्षितिज रेखा दीन ।
निपट चुप्पी देख, वटुक विस्मित थे खड़े कुछ सोचते ज्यों हीन ॥ १७॥

पुनः स्वर को साध, वटुक बोला "अम्बिके! कर दो क्षमा अपराध ।
यहाँ मुनि का राज्य, मृग–विहंग वरूथ क्रीड़ा हेतु भूमि अबाध ॥ १८॥

वाल्मीकि मुनीन्द्र, यहाँ रहते हैं दया–निधि हम उन्हीं के शिष्य ।
चलें आश्रम बीच, वहाँ गुरुवर जोहते हैं ले प्रभूत हविष्य। " ॥ १९॥

सजल मीठे बोल सुन सकुचकर तनिक विचलित–सी हुई वह वाम ।
खुले अधर अधीर तारिकाएँ हुईं चंचल भर पुलक अभिराम ॥ २०॥

"सौम्य वटुक किशोर! जहाँ चलना था वहाँ मैं आ गयी हूँ आज ।
देख लो सब ओर, पार्वती सुषमा सजी है किये अनुपम साज ॥ २१॥

मृग–विहार–प्रमोद और जल की लहरियों का स्वच्छ सात्विक राज ।
नदी सम्भृत नीर, उञ्छ और निवार मेरा सुलभ सिद्ध अनाज "॥ २२॥

मुनिकुमार अधीर, देखकर देवी न चलने को अभी तैयार ।
चलें आश्रम तीर, थे समाकुल, साथ में सन्देश का उपहार ॥ २३॥

मुनि–चरण के पास पहुँचकर बोले, "विभो! आश्चर्य महदाश्चर्य !
देवि दिव्य स्वरूप! स्वर्ग से निक्षिप्त मानों हो शची मुनिवर्य ! ॥ २४॥

एक दुबली देह, स्निग्ध आँखों में बसाये करुण जग का प्यार !
लाइये प्रभु पास। आपकी ही भावना कविता बनी साकार" ॥ २५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उठ गये मुनिवर्य, रहा सम्भ्रम अब न था ज्यों मिल गया हो भेव ।
थे निमीलित नेत्र, कल्पना–विद्युत् गयी थी कौंध–सी स्वयमेव ॥ २६॥

टूटता था तार, जो समाहित चित्त था अब तक रहा अविकार।
निर्विकल्प समाधि, किये थी जो बन्द अब तक हृदय के शुभ द्वार ॥ २७॥

खोलती थी चारु, सत्त्व के व्यवहार का आँगन उजास उदार ।
नहीं जिसमें छिद्र, कपट या आयास का कुछ भी रहा व्यवहार ॥ २८॥

मुनि सदा स्थितप्रज्ञ, त्रिगुण से बँधना न जिनका सहज सिद्ध स्वभाव ।
चिद्विलास प्रवाह, देखते थे जगत को ज्यों जड़ बने निर्भाव । ॥ २९॥

कुछ दिवस जो पूर्व क्रौंच नर को भूमि पर गिरते लखा था हाय !
हिल गया था मौन घुले थे मुनिवर्य कितने हुए थे निरुपाय ! ॥ ३०॥

बधिक को दे शाप, हुए थे आश्वस्त किंचित् अस्तमित परिताप।
निर्विकल्पक भूमि जा विराजे थे महा मुनिवर्य अपने आप ॥ ३१॥

"यह अनोखी बात! वास्तविक या देव–कौतुक! अप्सरा अनजान–
सघन अटवी भेद, भला कैसे यहाँ आयी भामिनी कुल–मान"? ॥ ३२॥

वाल्मीकि उदार, चले सत्वर साथ शिष्यों की समाकुल भीड़
चली भर उत्साह, भावना पौगण्ड की–सी हो रही उत्क्रीड़ ॥ ३३॥

पहुँच कुल्या तीर, देखते सौदामिनी ज्यों संकुचित हो अस्त ।
श्याम केश–कलाप, पवन से अवधूत धूसर चित्र–रचना व्यस्त ॥ ३४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नत नयन थे चारु, चिर–प्रतीक्षित गोद माँ की देखते अविकार ।
सान्द्र शीतल गोद, नहीं जिसमें छिपा कोई भाव बन उपकार ।। ३५।।

स्पृहा या जग–रीत की न जिसमें उठ सकी है आज तक प्राचीर ।
स्वच्छ स्नेह उदार सलिल समतल बहा करता वक्ष अपने चीर ।। ३६।।

अँगुलियाँ असहाय पांशु–पट पर रच रही थीं नियति के कुछ छन्द ।
शिथिल उनके भाव, भाग्य–कुड्मल की कलित क्रीड़ा हुई ज्यों मन्द ।। ३७।।

वाल्मीकि मुनीन्द्र वहाँ पहुँचे और देखा ललित काया क्षाम ।
दीनता की मूर्ति, मातृबाला धीरता की गाँठ–सी अभिराम। ।। ३८।।

सूखकर प्रस्वेद एक भोला भाव रचकर खोल देता भेद ।
भरित भूषण देह थकी–सी कह रही यात्रा के अपरिमित खेद ।। ३९।।

'आह क्यों संकोच? मध्य इसका पा रहा है मातृवत् विस्तार ।
अभी कलरव बन्द, सो रहा शिशु सतत सिंचित स्नेह–स्वप्न–दुलार' ।। ४०।।

"कौन हो तुम देवि ! उठो, आश्रम में चलो सौभाग्य की तुम मान ।
सहज मेरे शिष्य आज से हर पल तुम्हारा भी रखेंगे ध्यान ।। ४१।।

सरल शुचि सुकुमार, स्वर्ग से उतरी धरा पर करुण कोमल रीति ।
लिये प्राण नवीन, जो सिखायेगा तुम्हें नव–नव कला से प्रीति ।। ४२।।

किस छली का त्याग भर रहा शुभमूर्ति तुममें अचल भाव विराग ?
शोक मत कर बाल, भर रहा कुड्मल सलोना गन्धसिक्त पराग ।। ४३।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धैर्य की तुम मूर्ति, धैर्य ही सौभाग्य तेरा धैर्य ही अहिवात
यह तुम्हारा जन्म दूसरा, समझो, उठो, बीती दुहेली रात" ।। ४४।।

नियति का नव छन्द, काल स्थिर था, सीय मन था डोलता असहाय ।
'जीव कन्दुक गोल क्या निरन्तर भटकने को ही बना निरुपाय' !।। ४५।।

'प्राण का क्या मोह! किन्तु नन्हा प्राण हमसे जो जुड़ा है देव ।
क्या करूँ, हा हन्त! धरित्री तू ही बता मेरे अगम का भेव '।। ४६।।

चुप खड़ा वटुवृन्द देखता था दिये आँखों को अचल विस्तार ।
मूक थे मुनिवर्य, सजल आँखों में नयी आभा करुण विस्फार ।। ४७।।

मोतियों–से अश्रु नयन–कोरों से धरा पर गिर रहे थे कान्त ।
नदी का उपकूल, विश्रमित था किन्तु धारा बह रही अश्रान्त ।। ४८।।

झुके तनिक मुनीन्द्र, बाँह को देकर सहारा अवनिजा के हेतु ।
किन्तु सजग सुवाम उठी अपने आप जिसके साथ है श्रुति–सेतु ।। ४९।।

पहुँच रम्य कुटीर, दिया मुनि ने नव कुशासन, सीय शिथिल शरीर–
बैठकर सुविराम, देखती थी अँगुलियाँ, नख, पंकमज्जित चीर ।। ५०।।

शून्य गृह अनुमान अवनिजा के नयन उत्सुक हुए चारों ओर ।
कौश कन्था मात्र, पार्श्व में जल–कुम्भ, हिलती जीर्ण बल्कल–कोर ।। ५१।।

आ गये मुनिराज, हस्त–सम्पुट में लिये फल–फूल का उपहार ।
नकुल भी था साथ चपल लाघव से बनाता था मधुर व्यौहार ।। ५२।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर मधुर विश्राम, भामिनी ने करुण परिचय दिया अपने आप ।
मुनि निमीलित नैन, सुना गद्‌गद भाव, थे आश्वस्त गत–सन्ताप ॥ ५३॥

"यह सुयोग सहर्ष दिया विधि ने आज मेरी तपस्या के अर्थ ।
अनुगता का त्याग? सहज ही प्रतिशोध लेगा, नहीं होगा व्यर्थ ॥ ५४॥

राम नृपति प्रवीण एक दिन ऐसा न हो कि बनें जगत में दीन ।
व्यर्थ नृप की आन, जहाँ लघुता उठ न पाये छले प्रभुता हीन ॥ ५५॥

यह तपस्विनि बाल, आत्मदीपंकरी ज्वाला बनेगी अनिवार्य ।
शोक–मोह समस्त जलेंगे जग–दोष जैसे शलभ–कण परिहार्य ॥ ५६॥

रामवीर्य अमोघ बनेगा माँ का कवच·उत्तुंग कुधर विशाल ।
नहीं अबला नारि रहेगी अबसे धरा पर। वह चिरन्तन ज्वाल"! ॥ ५७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षष्ठ सर्ग

मायाविनि रजनी ने दिनकर को सहलाया
धीरे से चरण दिये धरती पर निर्विकार।
प्रियतम तम को पहनाया चन्द्र किरीट शुभ्र
बिखराया क्रीड़ा–आँगन में सित नखत–हार ॥ १॥

यह था प्रदोष का काल मुनीश्वर ध्यान–मग्न
प्रज्ञा ऋतम्भरा में मानस करता विहार
वटु–वृन्द सान्ध्य–अर्चना हेतु उपकूल गया,
रह–रहकर बह चलती थी वासन्ती बयार ॥ २॥

एकान्त निलय में निभृत किन्तु आश्वस्तिमयी
दर्भासन पर लेटी सीता, था शिथिल गात
मन में थी चुभनभरी पीड़ा की हूक बड़ी
तर्जना लिये आयी थी एकाकिनी रात ॥ ३॥

रथ ऊबड़–खाबड़ पथ पर चलने से सुदीर्घ
सब अंग व्यथित हो रहे, शिथिल थे पोर–पोर
मुनि करतल से उपहार मधुर पाकर सीता
निद्रा देवी के अंक गयी थी लुढ़क घोर ॥ ४॥

वह निद्रा जिसमें सोया था सन्ताप विकल
सपनों का कलरव भी तल में बैठा विलीन
थी गहन स्वाप–माया पसरी जो तन–मन पर
धरती की नव प्रतिरूप बनी सीता नवीन ॥ ५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थी अरण्यानिका शान्त प्रभा से लदी हुई
वन देवी जिसमें थी विराजती नयन खोल
लखती थी अपना कृत्य चित्र का भाव लिये
विस्मय का था सम्भार धरा हो या खगोल ॥ ६॥

अधखिली चाँदनी फैली थी भूमण्डल पर
रचती थी अभिनव धूप–छाँह का इन्द्रजाल
झुक पवन सक्रीड़ चल रहा था वर मण्डप में
जैसे चलता हो प्रिया संग मदभरी चाल ॥ ७॥

ऊपर नखतों की मालाएँ थीं रहसमयी
नीचे जुगनू का दल अपने व्यापार लीन
उन्निद्र पण्य–वीथी में जैसे चलता हो
चुपके–चुपके कुछ लेन–देन लेखा–विहीन ॥ ८॥

तमसा के तीर न सारस हैं, पनघट सूना,
जलतरी वृक्ष के मूल बँधी सोयी अमन्द
बह रही रुपहली धार शान्त निरवधि गति है
जिसमें कुछ भाव नहीं अपने कुछ नहीं छन्द ॥ ९॥

उपकूल खड़े हैं तटिनी के युग छोर तने
निस्तब्ध देखते जल–प्रवाह की नियति शान्त
है स्तब्ध निशा ज्यों रुका हुआ है काल–चक्र
कृतिमय जगती का स्वप्न देखता रहा ध्वान्त ॥ १०॥

गत मध्य निशा केतकी–सुरभि के झरने में
अवगाहन कर वातास लगी बहने अधीर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तमसा की लहरों में बढ़ने की होड़ लगी
ऊषा का स्वागत करने को हो रही भीर ॥११॥

ब्राह्मी वेला थी सजल स्वच्छ शिशु मुख प्रभात
ऊँचे ऊँचे वृक्षों के नव–नव पात हिले
चुहचुहिया ने कलकण्ठ गान कर बतलाया
'अब जागो' प्रिय–नयनों से प्रणयी नयन मिले ॥१२॥

जागी सीता मन में प्रणाम कर मुनिवर को
पहुँची तमसा के तीर प्रणत बोली अधीर–
"माता! प्रभु कुशल रहें, साकेत प्रजा समृद्ध
मुझ वियोगिनी की उन्हें न साले तनिक पीर ॥१३॥

मैं नारी अपनी प्रकृति मात्र से हारी हूँ
पत्नी, माता से इतर न मेरा कार्य अन्य
इतना ही यदि मैं कर पाऊँ सम्पादन तो
बस लखूँ जगत में अपने को मैं परम धन्य ॥१४॥

यह कुछ विशेषता नहीं, सहज सामान्य रूप,
हाँ स्वार्थ दिखाई देता है इसमें न अल्प
पर मेरी इसमें भुक्ति–मुक्ति है छिपी हुई
संवेदन के कश बनते जाते मृदुल तल्प।"॥१५॥

आचमन किया, फिर शौच–स्नान से निवृत हुई
आयी सीता आश्रम में जो अब था सूना
वन कुक्कुट बोल रहे थे। अब कुछ करने की
सीता के मन में थी उमंग, था सुख दूना ॥१६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सब कुछ करने का चाव उमगता था मन में
पर वर्जित थे कुछ क्षेत्र ललक थी दबी हुई
यह परिवर्तित परिवेश नया कुछ करने को
आया था जिसमें घटनायें थीं नई–नई ॥ १७॥

आश्रम बुहारकर सीता ने गोमय लीपा
जैसे वसुधा पर कनक–वारि फिर गया गाढ़
फिर सौध और गैरिक से रच अल्पना सुघड़
परिपूत धरा का तिलक किया सुन्दर प्रगाढ़ ॥ १८॥

सन्ध्या–वन्दन कर ऋषि आए अनुगत वटुगण
आनन में लाली लिये खड़ी सम्मुख सीता
अपने में सिमटी, वदन ओप से मण्डित था,
जननी की गौरव–मूर्त्ति, न अब थी परिणीता ॥ १९॥

मुनि ने देखा आश्रम जैसे दुलराता हो
बन चपल सरल शिशु अपनी महिमा में खोया ।
थे क्रीडनीय शिशु–पल्लव, स्फुरित वनस्पतियाँ,
सिहरन ले बहता पवन आत्म–सुख में भोया ॥ २०॥

जग के विराग से पूर्ण महामुनि वाल्मीकि
संसृति के राग–मर्म को निपट समझते थे
'शिशु के परिपालन में जननी के बहिरन्तर
की महत्भूमिका' मन ही मन में कहते थे ॥ २१॥

'यह समय–सुयोग बड़ा ही दुर्लभ आया है
खिलने को है नव फूल धरा पर अविज्ञात

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह जनक–नन्दिनी, पुरुषोत्तम की भार्या है
मैं लखने को व्याकुल शिशु–मुख शोभावदात ॥ २२॥

जो तपःपूत श्रृंगी ऋषि हैं निष्पाप सदय
जिनकी करुणा का रेचन लेकर गुरु वशिष्ठ–
रचते हैं जन–अभिरंजन राम त्रिलोकधन्य
दशरथ हैं जिनके जनक सदा जो सत्यनिष्ठ ॥ २३॥

भार्या को त्यागा किंवदन्तियों को सुनकर
जो आँख ओट बनती–मिटती नित रहती हैं
विश्वास चिरन्तन परम शुद्ध शिव सुन्दर है
हंकृति–छायायें उसे भला कब गहती हैं ॥ २४॥

सब दोष और कल्मष या शुभतर भाव विमल
सब अहंकार से स्फुरित–पुष्ट होते अपार
विश्वास जहाँ है वहाँ नही हैं अहं भाव
दो समतल धाराएँ बहतीं ज्यों मुक्त द्वार ॥ २५॥

राघव को है प्रत्यक्ष प्रिया का गूढ़ हृदय
सीता जो 'अर्धांगिनी' नाम का प्रकट रूप
मर्यादा की भी मर्यादा को अनदेखा
कर दिखलाया रघुवर ने जो अपना स्वरूप–॥ २६॥

यह राजोचित भी नहीं, कहाँ वह मानवीय !
पतिव्रता सौम्यशीला का यह परित्याग करुण
निर्जन श्वापद से भरी अरण्यानी भीतर
सीता का कातर नाद सुने कोई दारुण।॥ २७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उर में है भारी व्यथा उदर में नन्हा शिशु
सोया जिसको प्रात: का कुछ भी ज्ञान नहीं
माँ परित्यक्ता असहाय अकेली अबला है,
हैं महामहिम नप पालक इसका भान नहीं ॥ २८॥

राजा शास्ता है माना मर्यादा उसकी,
दो नयन किन्तु समदृष्ट भाव से रहना है।
पर अर्द्धांगिनि तो अपने से कुछ भिन्न नहीं !
उसके अभाव की पीड़ा अब तो सहना है ॥ २९॥

मेरा आश्रम जगमगा उठा सीता आयी
वह मेरे तप की साक्षी बनकर विहरेगी
राजा के पिच्छल मर्यादा अनुशासन से
अनुक्षण चुप रह अभ्यन्तर कभी न सिहरेगी ॥ ३०॥

यह वन–देवी का परम मनोरम वन–विहार
तृण लता विटप वीरुध सज्जित प्रांगण विशाल–
सीता का मानस–कुसुम खिलायेगा नवीन
नवगन्ध लिये घूमेगा प्यारा शिशु मराल ॥ ३१॥

तमसा सीता की सखी चिरन्तन धवल धार
बाहों में भरकर उसे सदा नहलायेगी
प्रिय की स्मृति कभी सताये तो माता रजनी
आश्वासन दे कुछ ओस–बूँद टपकायेगी' ॥ ३२॥

हैं मुँदे नयन, दर्भासन बैठे वाल्मीकि
स्थिर मेरुदण्ड, त्रिकुटी में ध्यान समाहित है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्तर ही अन्तर चिद्विलास चल रहा निरत
करुणा की कुल्या बही न अब अन्तर्हित है ॥ ३३॥

जबसे सीता आश्रम में आयी है तबसे
जीवन—खग चहका और लगा कलरव करने
क्रीड़ाकुल तमसा की लहरों को छू—छूकर
वन—गन्ध लिये इठलाकर पवन लगा बहने ॥ ३४॥

कोमल कोपल की अरुण हँसी लस जाती है
लद जाते हैं पादप—मंजरियों के गहने
गोशाला, शाला—पन्थ, अलिन्द, कुटीर—गर्भ
गोमय—मज्जित ज्यों झीना कनकवसन पहने ॥ ३५॥

तमसा की लहरों में हुलास दिन—दिन दूना
उजली सिकता का पाट हँसी मानो बिखरी
है झूम पुलिन की तरु—छायाओं की जल में
जैसे कालिन्दी श्याम—वदन छूकर सिहरी ॥ ३६॥

बटु—गण आपस में मन—प्रमोद को बाँट रहे
क्रीडांगन या शिक्षा—प्रांगण की द्विधा नहीं
शिशु—सुलभ सरल है मधुर सहज पावन विचार
समरस जीवन है पाठ, पराई विधा नहीं ॥ ३७॥

मुनि मौन साध रहते हैं मनन परन्तु सतत
चलता रहता है विश्व चित्त के अन्तर में
आचरण कर्म का बन जाता है महावाक्य
अनमोल शब्द बैठे रहते मुख गह्वर में ॥ ३८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकान्त शान्त आश्रम लगता सूना–सूना
वह घोर शान्ति जब–जब विस्मित कर देती है
लज्जितकर तब काकली जानकी मध्यम स्वर
उपपार्श्व कुटीर गोष्ठ में रव भर देती है ॥ ३९॥

नीवार उञ्छ श्यामक कदन्न या कन्द–मूल -
से पोस रही है अपना, राघव का शरीर
प्रात: से ले दिन ढले सतत श्रमशील सजग
संवाहन करता है जिसकी काया समीर ॥ ४०॥

वह सीता जिसके पाँव भरे, आसन्न–प्रसव,
जो नयन–महोत्सव लखने को व्याकुल अधीर
पांडुर कपोल चम्पई देह कुछ शिथिल अंग
आँखों में चाव भरी ऊष्मा की नयी भीर ॥ ४१॥

चुनकर लाते वटु वन से जो सूखी टहनी
सीता सहेज उनको चौके में रखती है
करती है सिद्ध रसोई देकर कान उधर
मुनि की शिक्षा–वल्ली सुनती सुपरखती है ॥ ४२॥

शिशु के संवर्द्धन हेतु यदपि मुनि ने पहले
ही भली–भाँति उसका पोषण–संभार किया
पर सीता ने निज आतिथेय की चर्या में
जो लीन हुई अपना न तनिक उपचार किया ॥ ४३॥

सिद्धाशन से गोग्रास और गृहपाल भाग,
कागाशन भी पहले विभक्त कर लेती है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सद्यः तीनों को शिशु का ही प्रतिरूप मान
भर–भर हुलास नैवेद्य सभी को देती है ॥ ४४॥

दो घरी दुपहरी बीती है मुनि हैं विभोर
प्रज्ञा–सर के अवगाहन में हैं लगे हुए
वटु ज्ञान–मुग्ध निज भूख–तृषा का भान नहीं
दुबिधा समुद्र की महा विजय में पगे हुए ॥ ४५॥

रख दिया भाग सीता ने देव अतिथि का भी
मुनि वटुगण के आने की राह निरखती है
समरस–प्रसाद के भोगों से परितृप्त क्षुधा
देने में ही पाने का भाव परखती है ॥ ४६॥

शिशु डोल रहा उदरस्थ, जानकी चिदाकाश
सूना घट है घन–शावक की छाया न कहीं
बाहर से लगती भरी–भरी चैतन्य–प्रखर,
अन्तस्तल में नारी ममता–माया न कहीं ॥ ४७॥

अवनिजा रूप थी समझ न पाई अपने को,
बस राजभवन किंकरी और असहाय बनी
चल मर्यादा से परे अटल जिसका स्वरूप
जो स्वयंप्रभा थी वही आज निरुपाय बनी ॥ ४८॥

यह बोध हुआ था सीता को धीरे–धीरे,
पर थी परवश कर काल–नियन्ता को प्रणाम–
नारी का भाग लिये फिरती वन–आँगन में ज्यों
दीप–शिखा निर्जन में जलती हो ललाम ॥ ४९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गैरिक वल्कल सिर जटा–जूट पल्लव सिंगार
पार्वती वेश धर जब तब जाती सलिल तीर–
देखती प्रतिच्छाया शरीर निर्मल जल में
ज्यों पूछ रही 'तू कौन धन्य, क्यों हो गँभीर' ॥ ५०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सप्तम सर्ग

बीते बरखा के दुर्दिन ऋतु शरद सुहानी आई ।
ज्यों विपदा–वारिधि आगे लक्ष्मी की हो पहुनाई ॥ १॥

वन–काश खिली थी भू पर ऊपर थे उजले बादल ।
निर्मल सुहास था जल में जिसमें विकसित था शतदल ॥ २॥

वन का उल्लास सतोमय हँसता था श्वेत प्रभा में ।
हँसती थी राका रजनी अपनी चन्द्रिका विभा में ॥ ३॥

शिशु नकुल दौड़ते जाते माँ के पीछे अति चंचल ।
थे सुमुख धवल क्रीडारत मन की उमंग ज्यों अविरल ॥ ४॥

खंजन अनुराग सँजोये नभ से उतरे थे भू पर ।
थे शारदीय सुषमा को अपलक लखते जी भरकर ॥ ५॥

थी शरद विहँसती वन में हँसता था उर्वर सरोवर ।
रक्ताभ समाज कमल का लहराता था जल ऊपर ॥ ६॥

भौंरों की भीर लुरी थी अस्फुट स्वर में था गुंजन ।
मन्त्रणा विरुद्ध हुई थी संभ्रम में था पंकज–वन ॥ ७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस शारदीय सुषमा में सीता थी कुछ हुलसाई ।
अस्तमित अंशुमाली थे थी साँझ सहचरी आई ॥ ८॥

वनश्री लखने को गुरुकुल था गया प्रात ही उठकर ।
मृग–यूथ जहाँ रमते थे अच्छोद दरी गिरि–गह्वर ॥ ९॥

सन्ध्या–द्युति खेल रही थी पादप गिरि के शृंगों पर ।
था कनक–किरीट चमकता इतराता नभ के प्रान्तर ॥ १०॥

तमसा को अंजलि देने सीता आयी थी तट पर ।
थे अंशुमान अन्तर्हित झंकृत था झिल्ली का स्वर ॥ ११॥

वेतसी लता को पकड़े सीता कुछ झुकी हुई थी ।
थी देख रही परछाई कुछ क्षण यों रुकी हुई थी ॥ १२॥

कृशकाय गोमुखी काली बिखरी उलझी लट वाली ।
निर्वेद शून्य आँखें थीं जिनमें न राग की लाली ॥ १३॥

अपने में भूली सीता भूला था जग का मेला ।
जब भान हुआ तो देखा आयी प्रदोष की वेला ॥ १४॥

'लौटे होंगे मुनिवर तो वटु–गण भी आते होंगे ।
सुरभियाँ रँभाती होंगी बछड़े बल खाते होंगे' ॥ १५॥

उत्साहभरी पुतली–सी सीता लाघव से आयी ।
सुरभी को पकड़ लिया था आँखों में झँव–सी छायी ॥ १६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूरागत मुनि ने देखा सब समझ गये थे पल में ।
नारी का सकरुण गौरव शोभित उसके अंचल में ॥१७॥

वह महापर्व आया था नारी का आज सनातन।
थी सिद्धि मनीषा मुनि की सुरभित जिससे वन–प्रांगण ॥१८॥

पार्वती निशा जागृत थी वनदेवी हुलसायी थी।
सपने गुहती थी नव–नव सीकर की झर लायी थी ॥१९॥

थे देख रहे गिरि–गह्वर अभिषेक–महोत्सव सुन्दर ।
राका रानी शोभित थी हीरक–पर्यंक मनोहर ॥ २०॥

अवसित निशीथ था आया उत्कर्ष–प्रहर दिनमणि का ।
वेदना प्रसूता की थी अब शेष रह गयी कणिका ॥ २१॥

शिशु–यमल पद्म–पल्लव से सीता ने भू पर जाए ।
जननी की स्नेह–तुला से मुनि हर्ष बीज अँखुवाए ॥ २२॥

मुनि हर्ष–विभोर निरखते, थीं अर्द्ध निमीलित आँखें ।
मन शततन्त्री झंकृत था, उड़ गया मौन भर पाँखें ॥ २३॥

मंगल गाते थे वटु–गण गुंजरित हुआ था कानन ।
अनुनाद लिये फिरता था सी–सी कर चपल प्रभंजन ॥ २४॥

सूतिका प्रथम ही निर्मित सीता उसमें अब आई
दो अतिथि अनामक आये, सब करते थे पहुनाई ॥ २५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रति दिवस प्रात जब सीता दो विधु–मुख को लखती थी ।
वे चन्द्र–कला से बढ़ते, कल्पना सजग रहती थी ॥ २६॥

अपनी दो–दो प्रतिमाएँ समरूप सुधामुख पाकर।
सुध–बुध खोई रहती थी करती कल्पना मनोहर ॥ २७॥

कुछ बड़े हुए अब चलते घुटनों के बल धरती पर ।
सुरभियाँ रँभाती जाते जब निकट गोष्ठ के सत्वर ॥ २८॥

गोवत्स–खुरों से मर्दित थी धूलि उन्हें मनभाई ।
जैसे वसुन्धरा के ही दो शिशुओं की परछाईं ॥ २९॥

पावन पांशुल अभिषेकी थे यमल चमकते भू पर ।
हिमगिरि ने नहलाया हो ज्यों रजत–कुण्ड में धोकर ॥ ३०॥

सीता दोनों शिशुओं को तनु भुजा–लता में भरकर–
आई , वे मचल रहे थे भू–रज–लुण्ठन को तत्पर ॥ ३१॥

शुभ दिवस घड़ी में मुनि ने कर नामकरण अन्नाशन–
गृहपति का भार सँभाला फूला न समाता था मन ॥ ३२॥

शिशुचर्या पीछे सीता आश्रमचर्या में रत थी ।
मातृत्व–उमंग भरी थी वात्सल्य–राग अनुरत थी ॥ ३३॥

जब तब ही स्मृति में आती थी लोकापत्ति दुहेली।
अवमानी प्रिय की नर्मद छलना बन गयी सहेली ॥३४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रिय, राज और परिजन या राजोचित अभिलाषाएँ ।
इस समतल विश्व–निलय में रचतीं नव परिभाषाएँ ॥ ३५॥

'दाम्पत्य–वलय या परिजन के लय में संचित जीवन–
था वहाँ निपट संकोची भूली थी मैं अपनापन ॥ ३६॥

यह स्वर्ग–वितान निराला, दो सुत मैंने हैं पाये ।
सब अपना ही अपना है जैसे बचपन फिर आये ॥ ३७॥

लव–कुश वटु–गण या बछड़े सब को हमने ही पाला।
कुछ भेद नहीं मैं पाती सब ओर उजास–उजाला ॥ ३८॥

हैं यद्यपि यहाँ मुनीश्वर सबके कर्मों के प्रेरक।
हम सब उनमें ही पाते अपनी आत्मा उत्प्रेरक ॥ ३९॥

दो बाल विहरते भू पर या मेरे मन–आँगन में–
अभिलाषा के अँखुए हैं बढ़ते रहते क्षण–क्षण में ॥ ४०॥

मन का कदम्ब फूला है पर राग–तृषा न बढ़ी है।
निःशेष दान करने को कमला स्मित–नयन खड़ी है' ॥ ४१॥

थे बालक पुष्टवदन थे, शिशु सिंह विहरते वैसे ।
मुनि का मन हरने वाले कौतुकी कला हों जैसे ॥ ४२॥

लव–कुश के वपुश विलग थे वयं, वेश, विहार समन्वित ।
ज्यों सूर्य चन्द्र शिशु बनकर धरती पर आये वन्दित ॥ ४३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब कभी खिलखिलाकर शिशु द्रुत दौड़ कहीं जाते हैं।
मुनि रोक न पाते मन को झट दौड़ लिये आते हैं ।। ४४।।

सीता थककर कुटिया में बैठी लखती रहती है।
नन्हें–मुन्नों की माया यों तृप्त आप रहती है ।। ४५।।

वटु–गण उनको दुलराते छेड़ते किलकते चंचल।
बछड़े तब अनुकृति करते झंकृत होता दिङ्मण्डल ।। ४६।।

ऊपर अनन्त विस्तारी आकाश तना था, नीचे–
बहुरंगी सारी पहने वसुधा लेटी दृग मींचे ।। ४७।।

अनुक्षण उद्गीथ सुनाती तमसा की ऊर्मिल धारा ।
शीतल बयार बहती थी घाटी का लिये किनारा ।। ४८।।

वेतसी लता के झूले पर लव–कुश झूल रहे हैं
माँ उन्हें झुलाने आई किंशुक–वन फूल रहे है ।। ४९।।

ले पद्मकोष उड़ जातीं वन–सम्मुख भ्रमरावलियाँ।
मुँह तकती रहतीं बेसुध चंचल रंगीन तितलियाँ ।। ५०।।

सीता जब दोलन देती तार–स्वर युगल किलकते ।
कुछ और जोर से दोलन देने को माँ से कहते ।। ५१।।

शिशुओं की शिशुता में रँग सीता कुछ क्षण भूली थी–
अन्त: प्रसंग जीवन का जो चुभी हुई शूली थी ।। ५२।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भावी जीवन की उसको कल्पना न साल रही थी ।
दुर्घट अतीत की लपटें मन–उदधि उबाल रही थीं ॥ ५३॥

थी भूल न सकती सीता प्रिय की चितवन मनभाई।
जिसमें सिमटी थी जीवन–रस–निर्झर की मधुराई ॥ ५४॥

इस ओर परम तेजस्वी दो शिशु जैसे रवि पावक।
उस ओर विरस–मन रघुवर सीता के मात्र विभावक ॥ ५५॥

रह सकती थी न अनातुर जानकी प्रेम की निष्ठा ।
प्रिय की मति ही थी जिसकी सम्मति–प्रतिमान वरिष्ठा ॥ ५६॥

प्रिय ने निक्षेप दिया जो वह उन्हें सहेजे बैठी ।
गिन रही नियति के कम्पन जो अपनी धुन में ऐंठी ॥ ५७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अष्टम सर्ग

प्राण वल्लभा को घर से कर बाहर राघव शान्त हुए हैं
प्रिय पुरजन को जीवन–मरु की सुधा लुटा अक्लान्त हुए हैं।
स्ववश भूमि है, नृपगण सहचर, प्रजा समुत्सुक होकर लखती–
शरद–चन्द्र से राम–वदन को नील मेघ बनकर उनये हैं ॥ १॥

रघुकुल के सब पुण्य उदय होकर जैसे राघव बन आये
शस्य–श्यामला धरा विहँसती जन्म–जन्म के सुकृत सुहाये ।
स्वजन निरखते हैं राघव में अपनी छवि सुधि–बुधि बिसराये
महाविक्रमी अनुज साथ में वलय बनाते ज्यों परिकर हैं ॥ २॥

राजा वही प्रजा को जो सन्तान सदृश प्रतिपल सँभालता
अपना सुकृत तिलक कर उसको प्रजा–दोष मन में न पालता ।
प्रजा–दोष को शासन ही की कमी मानकर राजा तपता
अनुरंजन ही प्रकृति मात्र का राजा का दुर्लभतम वर है ॥ ३॥

रघु की सन्तानों में अब तक होते आये हैं जो नृपवर
समदर्शी या सुहृद जगत का हुआ न कोई जैसे रघुवर ।
समतल मन है, शान्त भुवन है, प्रजा राम विधु–वदन जोहती
पुरजन का अनुराग कमल–सा खिला, खिले राजीव–नयनहैं ॥ ४॥

जो थी सहज अभीप्सा मन की आज राम की पूर्ण हुई है
तुलना–स्पर्द्धा ईर्ष्या–ममता अवधराज में छुई–मुई है ।
बीत गये दिन महासमर के बीत गयी दुर्दिन की रातें
चक्रवात है शान्त, सलोना हंस सरोवर पर उतरा है ॥ ५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यद्यपि जीवन का वसुधा–तल समतल है हरियाली उसमें
किन्तु फूल या मधुर फलों से झुकी नहीं है डाली जिसमें ।
नोक–झोंक जीवन–संगिनि से पथ का रसमय रपटा–झपटा
ऊबड़–खाबड़ पथ पर चलने का कोई आस्वाद अलग है ।। ६।।

भरा भवन है, सुहृद स्वजन हैं, गुरुजन, परिजन या अनुचर हैं
जनसंकुल परिवेश मधुर है हय–गय रतन–जड़े अम्बर हैं ।
किन्तु नहीं है हृदय–कमल को विकसित करने वाली सीता
प्रेम–पयोधि बड़ा है भारी उठती किन्तु न लोल लहर है ।। ७।।

ब्राह्मी वेला में नित उठकर ब्रह्म रूप का ध्यान लगाते
ब्रह्मात्मा–सी जो अभिन्न है आ जाती सीता मुस्क्याते ।
उच्चाटन हो जाता दैनिक चर्या में तत्पर हो जाते
पल भर को विश्राम न पाता, राघव का मन–तुरग न स्थिर है ।। ८।।

महाराज की पदवी भारी इन्द्र वरुण जिनके परिकर हैं
अपनी विभुता भूल प्रजा–हित करते रहते ज्यों अनुचर हैं ।
सीता–स्मृति–लपटों से अपना रहा–सहा पुरुषार्थ न झुलसे
आत्म–हवन करते हैं राघव प्रजानुरंजन–मख में निसदिन ।। ९।।

आरण्यक–विहार, जल–लीला, अक्षवाट, हाटक–मणि मन्दिर
सन्नतांगिनी पुर–ललनाओं का नयशील विलास मनोहर–
धरे हुए हैं, राम अनमने, कर्मयोग साधन में तत्पर
किन्तु जानने की न सोचते छिपी हुई वह सिद्धि कहाँ है !।। १०।।

कर्मों का अनुधावन जितना करते हैं उतना मन मरता
पिंजर जितना बड़ा विहग भी उतना ही पर फड़–फड़ करता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं अनुरत–से किन्तु विरत हैं, कौन लखे मन की गहराई
मुख हँसता रहता बाहर से किन्तु बिलखता रहता मन है ॥ ११ ॥

'पद्मराग थाली में मोदक लेकर सीता बड़े सबेरे
आती कहती–करो कलेवा, जाने कौन तुम्हें कब टेरे'
कौन सहजता मति में लाये, कौन केश में अंगुलि फेरे,
उस–पाषंड पिघल जाता है सीता की जब–जब सुधि आये ॥ १२ ॥

प्रिया–विरह में राम उधर अनुतापित होकर तिल–तिल जलते
नृपनय–शर सन्धान हुआ तब क्या करते रहते बस गलते ।
इधर जानकी स्वप्न देखती कुटिया में फैली अँधियारी
'नींद राम की उचट गई है शयन–भूमिका पर बैठे हैं ॥ १३ ॥

आँखों में है भरी उदासी सूनी–सूनी मटमैली–सी
उलझी बिखरी केश–राशि है चादर भी अति ही मैली–सी ।
वातायन के पार देखते जैसे अपनापन खोया हो
झुका हुआ है मेरुदण्ड भी, आँखों से दो बुन्द ढले हैं' ॥ १४ ॥

चौंक उठी, सीता ने देखा, दोनों शिशु निधड़क सोये हैं
अगल–बगल माँ की ममता की कल्प–बेलि–रस में भोये हैं ।
लेकर गहरी साँस जानकी बैठ गयी, मन–पाखी पिहका
दो नदियों की धार निराली मिल सकती कब तेज भँवर है ॥ १५ ॥

"सीता का सीमन्त वही है परिणय–बन्ध वही है पावन
दुग्ध–धवल है हृदय उठ रहे जिसमें कोमल आशय शोभन ।
वही आज वन में निर्वासित, एकाकी अनुताप करूँ क्या!
वत्सल–निधि दो बालक मेरे, सुरसरिता हैं, मुनिवर भी हैं ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सब मेरा संवर्द्धन करते शील—स्नेह छाया में रखकर
परहित के प्रतिमान बने हैं मुझ दुखियारी का दुःख हरकर ।
किन्तु आर्य हैं निपट अकेले कह सकते कैसे दुःख अपना
भीर प्रजा की हट जाती तब वे एकाकी रह जाते हैं ॥१७॥

सेवा—धर्म कठिन है सबसे नृप तो उसकी ही प्रतिमा है
आर्य हमारे परम सँकोची धैर्य—महीधर की महिमा हैं ।
मेरे निर्वासन से व्याकुल स्वजन, प्रजा, पशु—पक्षी होंगे
उनके आराधन में कैसे अपने मुख को मलिन बनाएँ ॥१८॥

कर्म—भूमि की डगर कठिन है, कहीं शिखर तो खड्ड कहीं है
पुरुषोत्तम की मर्यादा में निजता का कुछ बोध नहीं है ।
किस परिशोध—अग्नि में प्रभु ने मुझ अभागिनी को डाला है
और स्वयं जल रहे विकल हो विभुता की उजली माया में ॥१९॥

गुरु—चरणों में बचपन बीता आरण्यक—चर्या कठोर थी
हरण हुआ मेरा जब मेरे यौवन की आई न भोर थी ।
दिन के पिछले पहर माधवी गन्ध महकने को जब आई
कैसा पतझड़ हुआ,विलग हम हुए,यही क्या जीवन—क्रम है !॥ २०॥

जीवन—क्रम में दम्पति मिलकर फूल खिलाते, मोद बाँटते
दुःख को सुख में समरस करके दो कूलों का भेद पाटते ।
किन्तु गुर्विणी थी जब आतुर मुझको प्रभु ने छल से त्यागा
यह उनका अनुराग प्रजा से या अपना ही राग अलग है ॥ २१॥

यह साधारण विरह न प्रिय का प्रभु किंकर की चिर खाई है
कभी देखती हूँ जो इसमें उठती बड़ी दुसह झाई है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिवस मास का विरह नहीं है, त्याग भी नहीं, देश–निकाला
सीता ! तेरा विरह अजर है और वेदना–बेलि अमर है ॥ २२॥

गहन कुंज–कानन में धँसकर गंगा–तट लक्ष्मण ले आये
खाली नौका पर बैठाकर अपने ही पतवार चलाये ।
नमित नयन थे, जड़ित वदन था, मुझको कुछ अनुमान नहीं था
अल्हड़ लहरों को मैं लखती सुरधुनि के दक्षिण तट आई ॥ २३॥

उज्ज्वल गंगा का जल निर्मल नील सलिल तमसा का संगम
नीचे फैला है जल ही जल ऊपर नील नभोमण्डल तम ।
इतना है विस्तार हमारा किन्तु नहीं है कोई कोना–
प्रिय–निर्मोही इस मुख को लेकर मैं जहाँ चलूँ, छिप जाऊँ ॥ २४॥

तमसा के दोनों कूलों पर झुकी हुई है अटवी भारी
गादुर, गोह, उलूक छिपे हैं जहाँ न पहुँचे किरण बेचारी ।
किन्तु नहीं है मुझ अभागिनी को छाया का कोई टुकड़ा
छाया भी छूने से डरती, सीते! तेरी नियति यही है ॥ २५॥

लव–कुश दो बालक हैं मेरे सहज सलोने, मृग के छौने
वत्सलता की बरखा करते जुड़वाते हैं मन के कोने ।
बाहर से ठंडक मैं पाती किन्तु सुलगती भीतर ज्वाला
ताप भले दृग से ओझल है पर उसका अनुताप बहुत है ॥ २६॥

करुणमूर्ति मुनिवर करुणा से भरकर मेरा लालन करते
भीतर–भीतर सतत बिलखते बाहर किन्तु बिहँसते रहते ।
यह सुयोग है या कुयोग है, वटुगण मेरे प्रिय परिजन हैं
नृप की हूँ किंकरी अभागिन या रानी हूँ महारण्य की" ॥ २७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोच कभी करती है सीता राघव की जो निपट अकेले
बैठे हैं, वे भरी सभा में न्याय कर रहे हैं अलबेले ।
है शरीर, गतिशील प्राण हैं, किन्तु न मन का वास कहीं है
नीड़ निपट है, कूज रहे, शिशु, उड़कर विहग कहीं है बैठा ॥ २८॥

दोनों के दो ह्रदय नही हैं, मति चिन्ता भी अलग नहीं हैं
रघुनन्दन के और जानकी के शरीर दो विलग सही हैं ।
युगल भाव की गहराई को समझ रहे हैं सीता–राघव
भला कहाँ दम्पती ह्रदय के छिप सकते सद्भाव निरन्तर ॥ २९॥

किन्तु भावना ही न जगत के सुख–दुःख का परिमापन करती
वह भी तो अवलम्ब खोजती गोचरगम्य भावना रहती ।
जो जितना ही सदय ह्रदय है उतना ही सुख–दुःख असीम है
सीता इन दोनों की परिमिति, भाव गहन है, द्वन्द्व सघन है ॥ ३०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नवम सर्ग

मुनि वाल्मीकि की तपोभूमि तमसा–तट की शाद्वल शोभा
गहरे जल की नीलम छाया किसका मन देख नहीं लोभा ॥ १॥

मछलियाँ चुगाते थे कुछ तो मृगशावक को पुचकार रहे
कुछ ऋषिकुमार बैठे–बैठे उद्‌गीथ साम उच्चार रहे ॥ २॥

दिन ढलने में थी देर अभी, स्वाध्याय पूर्ण, था शेष काल
अभिमत प्रमोद की वेला थी था विलस रहा मानस–मराल ॥ ३॥

वाल्मीकि कुशासन पर बैठे कुछ देह शिथिल थी, देख रहे–
स्वच्छन्द किशोरों के मन की गति मन ही मन में लेख रहे ॥४॥

लव–कुश थे विलग मण्डली से तमसा–तट बैठे वीरासन
सरपत शर से वेतसी धनुष पर साध रहे थे अपना प्रण ॥ ५॥

उद्ग्रीव, नेत्र उद्‌भासित थे भौंहें कमान–सी तनी हुई
ज्यों वीर भाव हो रोषभरा शिशुता की जिसमें ओप नई ॥ ६॥

अन्तर्यामी मुनि भाँप गये यह क्षात्र प्रकृति है दुराधर्ष
उसका उत्कर्ष बढ़ाने में होगा ही मुझको सहज हर्ष ॥ ७॥

पर यह राजस स्वभाव दुर्बल हर लेगा राजा का निजस्व
'सब मेरा हो' यह क्षुद्र भाव किंकर कर देता है निजस्व ॥ ८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्धान शरों का इनका है मैं दूँगा इनको शान्ति क्षमा
संगीत ताल–लय सिद्ध ज्ञान अपनी लोकोत्तर भूमि रमा ॥ ९॥

मुनि ने सीता को बुला लिया, बतलाया मन का सरल भेंद
माँ की आँखें थीं चमक उठीं रह गया न उनमें तनिक खेद ॥ १०॥

माधवी सुता थी जनकलली राजा की पालित कन्या थी
वह कनक–भवन की सम्राज्ञी पर अन्त:सलिला वन्या थी ॥ ११॥

पौगण्ड किशोरों की चर्या में सीता अनुरत थी प्रतिपल
संकेत मात्र ही सीख बना लव–कुश बढ़ते जाते अविरल ॥ १२॥

सन्धान, स्वाप, जागरण, स्वप्न आग्नेय मरुत जल उपल–वृष्टि–
सिखलाया सीता ने जिससे दुर्नीति दमन हो, रहे सृष्टि ॥ १३॥

जो एक हाथ में समिधा ले कर रहे प्रजा का हित–चिन्तन
दूसरे हाथ में ले कृपाण करते हैं उसका परिरक्षण ॥ १४॥

सीता विदेह की सरल सुता कल्पना मूर्त्त थी भासमान
लखती अपनी आकृति नवीन विद्या–सहचरि का कर सँधान ॥ १५॥

प्रात: या सायंकाल नित्य खग–शिशु जब करते मधुर गान
सीता निज जीवन–गीत करुण स्वर में गाती भर ललित तान ॥ १६॥

प्राचेतस मुनिवर वाल्मीकि की आँखों में बन रंगमंच
रामायण रम्य उतरती थी सीता का जिसमें भाव रंच ॥ १७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तब ऋतंभरा प्रज्ञा में धँस समदर्शी मुनिवर ने देखा
सीता रघुकुल की ज्योति सदृश जैसे घन में विद्युल्लेखा ॥ १८॥

करके वाणी का स्तवन दिव्य रामायण मुनिवर कहते थे
जब आता था सीता–प्रसंग रोते थे और उमहते थे ॥ १९॥

निर्वेदमयी स्फुट मधुर सरल स्थिर पद्ममुखी भाषा प्यारी
मंजुल तन्वी आकृति पुनीत सबसे नवीन सबसे न्यारी ॥ २०॥

वीणा पर लव–कुश स्वर भरकर तब गाते कर लय का सँधान
देते तरु–पल्लव ताल मधुर सबका भूला जाता अपान ॥ २१॥

आई निर्वासन की घटना सीता की आँखों से धारा ।
बह चली,कण्ठ अवरुद्ध हुआ,बह गया कलित कल्मष सारा ॥२२॥

मुनि नेत्र–निमीलित बैठे थे था स्फुरित अधर जिसमें न बोल
माँ की गति–विधि के साक्षी लव–कुश बोल उठे अनकहे बोल ॥ २३॥

मुनि की रामायण पूर्ण हुई वे ख्यात हुए बनकर कवीन्द्र
लव–कुश सीता के साथ सुखी रहते जैसे वन में नरेन्द्र ॥ २४॥

मुनि संरक्षण में लव–कुश के सँग भूल गयी थी विगत व्यथा
सीता व्याकुल हो जाती थी गुनकर आगे की अकथ कथा ॥ २५॥

मुनिवर की तपमय चर्या थी वे विश्वबन्धु थे आप्तकाम
सिंहों से जीवन –परिभाषा रचते लव–कुश वन में ललाम ॥ २६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सीता जब होती थी स्वतन्त्र आश्रमचर्या से एकाकी
देखती प्राण–खग को मलीन पिंजरे में बैठा एकाकी ॥ २७॥

इस ओर हृदय सूना–सूना उस ओर न सूनापन कम है
अभिराम राम मन–मन्दिर बाहर से जगमग भीतर तम है ॥ २८॥

प्रभु के संकेतों से आगे–आगे चलने वाले लक्ष्मण
कुछ जान न पाये थे 'अन्तर्यामी का कहाँ छिपा है मन' ॥ २९॥

प्रभु–मनोदीप जो नित सँभालते थे निर्वातक स्नेह भरे
माण्डवी–प्राण थे समझ गये आर्या–वियोग की दाह अरे !॥ ३०॥

मध्यस्थ सभा उठ खड़े हुए, बोले–'आज्ञा हो, तो अनुचर–
कुछ करे निवेदन महाराज से उनका ही है प्रेय प्रवर' ॥ ३१॥

'निःशंक कहो', बोले रामानुज–'प्रभो! आपका यश–केतन–
त्रिभुवन में फैल रहा उज्ज्वल निशि में भी बन ज्योत्सना के कन॥३२॥

यह परम्परा है अश्वमेध करते महिमाशाली नृप–गण।
आज्ञा हो तो राज्योत्सव में हम सफल करें अपना जीवन' ॥ ३३॥

प्रभु निःस्पृह भाई की इच्छा को मेट कहाँ कब सकते थे
बेसुध हो उनके प्राण विकल उनकी काया में बसते थे ॥ ३४॥

दुन्दुभि निनाद, बज उठे तूर्यं, जनता के दोनों हाथ उठे।
नव वीरों ने ली अँगड़ाई नय–विनय सहित शर–भाल उठे ॥ ३५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चतुरंग सेन सज निकल पड़ी छाई गिरि–अम्बर–भू–जल पर
जैसे रघुकुल–क्षीराब्धि–ज्वार उमड़ा जग को लीलने सुघर ।। ३६।।

था शरद मास, थी स्वच्छ दिशा, खिल रहे सरोवर में शतदल
हंसों की राजी चुगती थी नीलम जल में कुछ मुक्ताफल ।। ३७।।

रवि को अभिनन्दन कर प्राची–मुख अक्षऊहिणी चली धीर
संघट्ट महानायक बनकर शत्रुघ्न चले आगे प्रवीर ।। ३८।।

उनसे भी आगे बकुलपंख घोटक चलता, थी गति गँभीर
वह अवध राज्य का प्रतिनिधि था रक्षा करते थे विकट वीर ।। ३९।।

रह गये अयोध्या में राघव अनुराग प्रजा का मूल भाव
जा सके न लक्ष्मण और भरत आज्ञापालन में रहा चाव ।। ४०।।

आपतित पन्थ में नकुल, सुरभि को देख मुदित शत्रुघ्न हुए
शर से दोनों को कर प्रणाम सुरभी के चारों चरण छुए ।। ४१।।

पहले पूरब पीछे उत्तर फिर पश्चिम दिशि को गया अश्व
खोजने चला था प्रतिद्वन्द्वी मिलता जाता उसको निजस्व ।। ४२।।

था भाव शान्ति का, मैत्री का, मृगया की थी उसमें न गन्ध
देता था सबको अभयदान सोने में मिल जाती सुगन्ध ।। ४३।।

सुन अश्वमेध का आयोजन रघुकुल–मणि का, पृथ्वी–नरेश–
ध्वज, छत्र, चँवर लेकर आते करबद्ध साजकर वीर वेश–।। ४४।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रखते नृप–प्रतिनिधि के पद–तल, पूजा करते, फिर जयोच्चार ।
समतल फैलाता अश्व कर्ण धीरे से करता हींकार ॥ ४५॥

तीनों आशाएँ विजित हुईं अब मलय दिशा की बारी थी
भर रहा वीर–रस–नद हिलोर कुछ नयी नहीं तैयारी थी ॥ ४६॥

सब वीर सुरसरित पार हुए तमसा गंगा संगम आया
थे लगे देखने चकित नयन वह धूप–छाँह की जल–माया ॥ ४७॥

बिसभोर सभी थे, भूख लगी थी, अश्व न रोक सका निजको
धानी पट ओढ़े पुलिन–पटल आवाहन करता था उसको ॥ ४८॥

वह गया विजय–मद मतवाला छककर चरने को हरी घास
सीखते जहाँ सीता–कुमार शर–विद्या, वह था गुप्त वास ॥ ४९॥

लख विजय–पट्टिका, छत्र, चँवर साधारण था जो अश्व नहीं
मदगर्वित चर्वण करता था सम शौर्य विनय की मूर्त्ति सही ॥ ५०॥

"यह है निषिद्ध, सम्भूति–क्षेत्र ऋषि मुनिगण करते वास यहाँ
समवृत्ति जहाँ की शील बनी पशुओं में भी है भेद कहाँ?॥ ५१॥

नृप–मद भी कितना है थोथा कर चित्त–विभव–विस्तार नहीं–
अपने को ठगता रहता है 'लूँ छीन जगत की सकल मही' ॥ ५२॥

करने को अपने शर–प्रयोग यह अवसर आया उचित आज
माँ की विद्या का शोध करें देखें नर वीरों का समाज" ॥ ५३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लाघव से नथुना पकड़ वीर ले गये,अश्व को बाँध दिया
थी घनी वेतसी–लता छाँह चारों पैरों से छान दिया ।। ५४।।

लखते रक्षक था अश्व नहीं भागे दौड़े–दौड़े आए
शत्रुघ्न महासेनानी को सब कुछ कम्पित स्वर बतलाए ।। ५५।।

सब दौड़े चारों ओर, वहाँ कोई न दिखा, दो नव कुमार–
कौतूहल से लखते उनको थे वीर वेश काछे उदार। ।। ५६।।

सब बोल उठे – 'हे वीर पुत्र! क्या तुमने देखा अश्व इधर'
केशरी–स्कन्ध को तनिक उठा बोले लव ज्यों वारिद के स्वर–।। ५७।।

'हमने छाना है अश्व–प्रवर हम इस वनस्थली के रक्षक
राजा करते विश्राम यहाँ हम ही हैं इसके संरक्षक ।। ५८।।

यदि जीत सको हमको रण में कर देंगे हम हय को प्रमुक्त
अन्यथा लौट जाओ सहर्ष रहने दो केहरि को प्रसुप्त' ।। ५९।।

शत्रुघ्न और सब सेनानी आए समझाकर गए हार
वे बड़े हठीले तेजस्वी गौरव भर उठता था हुँकार ।। ६०।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दशम सर्ग

'वर्जना नहीं जो मान रहे हैं ये बालक !
तर्जना नहीं धँस रही कान में, कुलघालक !॥ १॥

तो पकड़ो, बाँधो और छानकर रखो इन्हें
हय–शाला में फिर दीन भाव से लखो इन्हें।' ॥ २॥

शत्रुघ्न महानायक ने आज्ञा दी सक्रोध
दौड़े भट चिन्ता दूर हुई पाकर विबोध ॥ ३॥

हुंकार भयंकर कर लव ने करतल साधा
अभिमन्त्रित अविचल धनुष, न थी मनमें बाधा ॥ ४॥

शर प्रथम चला, टंकार–रव से गगन क्षुब्ध
पक्षी फड़–फड़कर उठे, गिरे, थी गति निरुद्ध ॥ ५॥

भट गिरे जहाँ थे पड़े वहीं बन मूक बधिर
सीता मूर्च्छित आशंकाओं के बादल घिर ॥ ६॥

स्थिर वाल्मीकि अन्तःप्रज्ञा सब समझ गयी
सीता सुनने वाली है कोई बात नयी ॥ ७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रामानुज ने भेजा वीरों को और कई
'यह महाश्चर्य है, वाल्मीकि की तपोमई–।। ८।।

गंगा तमसा की संगम–स्थली परम पावन
श्वापद भी जिसमें दिखलाते हैं अपनापन ।। ९।।

कैसे निरीह मैत्री–वन में पौरुष जागा !
सुन घोर धनुष टंकार वीर–रस ज्यों भागा !'।। १०।।

छिड़ गया विकट संग्राम घिरा वीरों का दल
घोड़ों के रद कटकटा उठे आघात प्रबल ।। ११।।

लव–कुश के खरतर तीर धँसे जा रहे प्रबल
हिं–हिं कर घोड़े नच उठते थे, वीर विकल ।। १२।।

भेरी तुरही दुन्दुभि–निनाद से तर्जित गज–
चिंग्घाड़ कर रहे, नभ दहाड़ता, उड़ती रज ।। १३।।

लव–कुश जैसे क्रीडासागर में थे विलीन
राघव सेना किंकरी बनी थी, भाव दीन ।। १४।।

हनुमान् महाबलवान वहाँ आए सत्वर
फेंके लव–कुश की ओर बड़े दो धरणीधर ।। १५।।

दो लक्ष बाण से भूधर नभ में चूर्ण हुए
इसके पहले नभ–सागर में शतघूर्ण हुए ।। १६।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हनुमान विकल 'यह महाविकट मनुजाद कौन–
जिसके भी आगे रुक जाता भयभीत पौन ॥१७॥

जो महाकाल का दर्प–दलन करते सलील
राघव में ही ऐसा बल देखा विकटलील ॥१८॥

यह ऋषिकुमार का ब्रह्म–दर्प या अपना ही–
आया है बन दुर्भाग्य, असम्भव जीत रही' ॥१९॥

सम्मोहन शर का था प्रभाव हनुमत् अबोध–
शिशु–से शव–क्रीड़ा लीन हुए,था विगत क्रोध ॥२०॥

फिर स्वापन–शर की माया लव ने दिखलाई
सो गये वीर हय–गय संयुत निद्रा आई ॥२१॥

रह गये सजग सौमित्र देखते आँख फाड़
टंकार नहीं, हिंकार नहीं गज की चिंघाड़ ॥२२॥

बोले सौमित्र–'कुमार लौट जाओ घर को
अब देर बहुत हो गयी, छोड़ दो घोड़े को ॥२३॥

यह इन्द्रजाल की कुहू नहीं छाया वाली
यह शौर्य–सूर्य की चमक तीक्ष्ण ऊष्मा वाली ॥२४॥

रोती होगी माँ जाओ प्यार उसे दे दो
उस की छाती में अपना अल्हड़पन भर दो' ॥२५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बोले लव–कुश–'हे वीर! न कायर बनो आज
कर लो अपना मख पूर्ण या कि सिर धुनो आज़' ॥ २६॥

वीर हुए आमने, धीर हुए सामने
चल पड़े सपच्छ तीर भाँति–भाँति के बने ॥ २७॥

घोर रव गूँजता, रुधिर घाव पूरता
उलूक बैठ पर्ण–विवर में सभीत घूरता ॥ २८॥

धरा सँकोच में गड़ी, जलोर्मियाँ बड़ी–बड़ी
विवर हुआ विशाल गगन में, हवा उड़ी–उड़ी ॥२९॥

कुमार भूमि राजते, विपक्ष नभ विराजता
एक था पदाति दूसरा विमान राजता ॥ ३०॥

पवन पर सवार था, शर निकर–प्रसार था
हाथ भी न सूझता था घोर अन्धकार था ॥ ३१॥

सारथी गिरा दिया, अश्व–मुख फिरा दिया
जानकी–कुमार ने महाविकट समर किया ॥ ३२॥

अडोल लखनवीर थे, न प्राण था, शरीर थे
विराट बाणराशि पिंजरा–सुबद्ध कीर थे ॥ ३३॥

लव–कुश घोड़े की पूँछ बाँधकर हनूमान–
आये कुटीर पर माता को लख गतप्राण– ॥ ३४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोने को आकुल हुए । महामुनि ने रोका
सीता प्रबुद्ध पाकर बयार का नव झोंका ॥ ३५॥

देखा, सम्मुख, नतग्रीव अश्व है खड़ा हुआ
है रौप्य कान्ति मरकतमणियों से जड़ा हुआ ॥ ३६॥

है पूँछ बँधा वानर बैठा सकुचाया–सा।
वह भी नतसिर कुछ गड़ा हुआ भकुआया–सा ॥ ३७॥

सीता ने सोचा – 'क्या अचरज मैं देख रही'
फिर देखा, वे तो हनूमान खोदते मही ॥ ३८॥

लव–कुश माता को लखकर कुछ भयभीत चकित
जननी–मुख लखने लगे ठगे–से भाव–भ्रमित ॥ ३९॥

सीता ने सब बतलाया रोकर विगत बात
वे हैं अचिंत्य फिर महाराज शुभमूर्ति तात ॥ ४०॥

ये मारुति हैं समझो न इन्हें केवल मर्कट
मेरी रक्षा की है करके संग्राम विकट ॥ ४१॥

मैं इन्हें तात सम सदा मानती आयी हूँ
दुर्भाग्य अरे! मैं कितना पाप कमायी हूँ ॥ ४२॥

मेरे ही पुत्रों ने इनको यों बाँध लिया
राघव के भी हैं पूज्य, नहीं वानर छलिया ॥ ४३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बैठे हैं किंकर सदृश नेत्र में जल–प्रवाह
करबद्ध, सिसकते नहीं, न उठती दबी आह' ॥ ४४॥

लव–कुश ने बतलाया माता को सभी भेद
मुनि थे प्रसन्न, सीता के भी मन में न खेद ॥ ४५॥

सब गये जहाँ असहाय पड़े थे वीर प्रबल
मूर्च्छित, न नेत्र–उन्मीलन का जिनको सम्बल ॥ ४६॥

रथ नष्ट–भ्रष्ट, शत्रुघ्न गिरे थे भूतल पर
तरकश तरुशाखा पर लटका था, धनुष इधर ॥ ४७॥

इतिवृत्त–वेदना से व्याकुल सीता झर–झर–
आँसू की बूँदें गिरा रही ज्यों मेह प्रखर ॥ ४८॥

मन्त्रों का लव–कुश ने कर दिया परावर्तन
सब उठे,जगे ज्यों नव प्रभात की स्वर्ण–किरण ॥ ४९॥

वह हर्ष और आवेग दुःख का था संगम
या पावसघन प्रज्ज्वल निदाघ का था संगम ॥ ५०॥

या दिवस सुनहले रात रुपहली का संगम
निर्द्वन्द्व रहे जिसमें वह सुख–दुःख का संगम ॥ ५१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकादश सर्ग

लौटा राजा का प्रतिनिधि वह अश्व अवध में आया
था शिथिल, अनी के आगे–आगे चलता हरषाया ॥ १॥

नंगे पैरों से चलते लक्ष्मण थे छत्र उठाये
ले चँवर भरत अपने कर जाते थे सतत डुलाये ॥ २॥

पीछे नौबत बजती थी गुंजित था गीत मनोहर
था कुशीलवों का जमघट चंचल थे मारू के स्वर ॥ ३॥

जब नगरवासियों ने यह पाया संवाद सलोना
सम्मर्द उमड़कर आया बच रहा न कोई कोना ॥ ४॥

राघव शत्रुघ्न मिले थे सुरसरि जैसे सागर से
जलवाही नील पयोधर धीरे–से कुछ कन बरसे ॥ ५॥

तन्वंगी कुल ललनाएँ गाने लग गयीं मधुर स्वर
विद्युल्लतिका–सी झिलमिल थी कौंध सौध के अन्तर ॥ ६॥

जो महावेदिका गोमय – लिम्पित विराजती भू पर
चित्रित विजयश्री मस्तक घोड़ा विराजता उस पर ॥ ७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बलिदान नहीं घोड़े का यह अहंकार राजा का
अब नृपति मात्र संरक्षक वह था सर्वस्व प्रजा का ॥ ८॥

अभिषेक प्रजारंजक का करने की अब तैयारी–
होने लग गयी अवध में प्रमुदित थे सब नर–नारी ॥ ९॥

राघव ने दिया निमन्त्रण नृप आये देशान्तर से
स्वर्णाभूषण मणि–माणिक प्रभु के चरणों पर बरसे ॥ १०॥

गिरि–गुहा सरित–संगम से आये अनेक विज्ञानी
मुनि वाल्मीकि भी आए लेकर सँग लव–कुश मानी ॥ ११॥

राघव ने परिचय पूछा मुनि ने सहर्ष बतलाया–
"आत्मज नृपवर्य तुम्हारे मैंने सब कुछ सिखलाया ॥ १२॥

विनयी हैं शील–समन्वित हैं महा बाँकुरे रण में
तुमसे ही धीरव्रत हैं वीरव्रत समरांगण में ॥ १३॥

वीणा के स्वर में गाते ये रामायण अति सुन्दर
वह पुण्य–श्लोक की गाथा क्यों सुने न आज सभा वर"? ॥ १४॥

मुनि का निदेश पाकर लव–कुश ने साधा संयत स्वर
बज उठे तार वीणा के स्वर–लहरी गूँजी सुमधुर ॥ १५॥

कल्मष को धोने वाला सीता–चरित्र अति पावन
जो छिपा गूढ़ धन सा–था वह प्रकट हुआ सबके मन ॥ १६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छलछला गयी थीं आँखें जन–जन की और सभा की
धरती निहारते राघव रह गये सजल एकाकी ॥ १७॥

लखती ऋतम्भरा प्रज्ञा मुनि की आँखें थीं मुद्रित
चुप हुआ विपंची, चुप स्वर, लव– कुश चुप थे, सब विस्मित ॥ १८॥

आया प्रसंग था सकरुण मन–कुधर हिलाने वाला
नवनीत प्रीति–सा कोमल कवि–हृदय रुलाने वाला ॥ १९॥

पल–पल की गणना करने वाले वशिष्ठ विज्ञानी
बोले– 'अभिषेक करूँगा, है कहाँ अवध की रानी? ॥ २०॥

नारी के बिना अधूरे नर का अभिषेक अधूरा।
पर है विधान, मिट्टी की महिमा से होगा पूरा' ॥ २१॥

मुनि वाल्मीकि तब बोले –इसकी आवश्यकता क्या!
सीता को झट बुलवा लो, परिणीता –परित्यक्ता क्या !'॥ २२॥

लव–कुश ने जाकर सीता को राजाज्ञा बतलायी
बन मूक राज–रथ चढ़कर सीता समाज में आयी ॥ २३॥

तन्वंगी सीता धीरे–धीरे चलती थी डग भर
पग आगे बढ़ता था मन मुड़ जाता तमसा–तट पर ॥ २४॥

थी सभा देखती नीरव मन का खग ठिठक गया था
आँखों में आँसू छाया सबका जी पिघल गया था ॥ २५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वल्कल–वसना सीता की अवगुण्ठन बननीं पलकें·
धूमिल–धूसर द्युति से मिल बिथुरी–बिथुरी थीं अलकें ॥ २६॥

वह दुर्बल काया–रेखा थी समा रही सबके उर
सन्ध्या की लाली में ज्यों ऊर्णा का तन्तु मनोहर ॥ २७॥

सब लखते थे विस्फारित नयनों से जग–मीता को
केवल राघव न निरखते निज परिणीता सीता को ॥ २८॥

बोले राघव – 'हे सीते! यह पावन यज्ञ हमारा
तुम अर्द्धांगिनी हमारी मैं हूँ अर्द्धांग तुम्हारा ॥ २९॥

राजा के मन को लखने वाली सन्तान प्रजा है
इसके मन में रानी के प्रति भेद तनिक उपजा है ॥ ३०॥

हे सुमुखि, सुभद्रे, सीते! परिशुद्ध भाव दो इसको
सम्पूर्ण हमारा मख हो चारित्र्य –चाव दो इसको '॥ ३१॥

सीता ने आँखें सीधी करके सब ओर निहारा
ऊपर चन्द्रातप जगमग दिखता था नहीं किनारा ॥ ३२॥

विद्याधर ऋषि–मुनियों की ऊपर मण्डली विराजित
नीचे महीपगण बैठे कौशेय कनक मणि–सज्जित ॥ ३३॥

दोनों के अन्तर्वर्ती गततेज विराजित रघुवर
प्रातः सन्ध्या की झुटपुट ज्यों उदासीन इन्दीवर ॥ ३४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जैसे समुद्र एकाकी हो द्रवित आह भर–भरकर
उच्छलित तरंगों वाली कल्लोलिनि सरित न पाकर ।। ३५।।

विस्तार विपुल पृथ्वी का नभ भी था गौरवशाली
सीता के लिए कहीं भी पग भर न भूमि थी खाली ।। ३६।।

वह बोली गद्‌गद् स्वर से "हे देवि माधवी माता
वत्सल है गोद तुम्हारी, कोई न जगत में त्राता ।। ३७।।

हो तुम्हीं एक गति मेरी मन–मुकुर निरखने वाली
मैं धँसी परीक्षा में हूँ है घड़ी विकट पल वाली ।। ३८।।

राघव अमेय सागर हैं मर्यादा उनकी रक्षित
सरिता मैं विपथनशीला यदि समझे जग मुझको च्युत ।। ३९।।

माता हो अन्तर्यामिनि तुम सूत्रधारिणी मन की
राघव को सब बतला दो गाथा मेरे जीवन की ।। ४०।।

सपने में भी राघव को यदि भुला सकी हूँ तो मैं
सोते में भी लंकाधिप को बुला सकी हूँ तो मैं ।। ४१।।

इस भरी सभा में माता हो जाऊँ पानी–पानी
अपनी ही दृष्टि जलूँ मैं बैठे हैं लव–कुश मानी" ।। ४२।।

अनिमेष राम लखते अब सीता की निर्मल काया
वह सीता की काया थी या उसकी झीनी छाया ।। ४३।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थे लखन विलुण्ठित भू पर थे भरत बिलखते भारी
शत्रुघ्न रुदन करते थे रोती थी सभा बेचारी ॥ ४४॥

उस भरी सभा में सबने देखा वह दृश्य भयंकर
फुंकार भरा गर्जन था कँप गयीं दिशाएँ डरकर ॥ ४५॥

था महाविवर धरती में सीता–चरणों के सम्मुख
नागों के सिर पर शोभित सिंहासन दिव्य समुन्मुख ॥ ४६॥

उस पर थी सहज विराजित मैत्री–आभा से मण्डित
करुणा की देवी पृथ्वी वसुधा त्रिभुवन–मन–वन्दित ॥ ४७॥

सीता को लेकर पृथ्वी झट अंतर्धान हुई थी
अचरज से सबने देखा, थे चन्द्र, न वहाँ कुई थी ॥ ४८॥

सीतार्पणमस्तु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सीतायन

समर्पण मिल जाए वरदान —
हृदय—कमल से अमृत बरसे, रहे सदा अम्लान ।
अर्पण में अन्तर्हित रहता 'कुछ होगा आदान'।
जल भीतर विस्फोट सदृश कर देता दान कुदान ।।
'सीतायन' सीता का घर है वह नारी की मान ।
सीता रघुबर में रमती हैं वे हैं सीताराम ।।
सीता के चरित्र की महिमा लख सकते बस राम।
नारी की चूडान्त कल्पना राग नं, द्वेष न काम ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri